मथुरा

मथुरा यमुना नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है । समुद्र तल से ऊँचाई 187 मीटर है । जलवायु-ग्रीष्म 22° से 45° से0, शीत 40° से 32° से0 औसत वर्षा 66 से.मी. जून से सितंबर तक । मथुरा जनपद उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर स्थित है । इसके पूर्व में जनपद एटा, उत्तर में जनपद अलीगढ़, दक्षिण–पूर्व में जनपद आगरा, दक्षिण–पश्चिम में राजस्थान एवं पश्चिम–उत्तर में हरियाणा राज्य स्थित हैं । मथुरा, आगरा मण्डल का उत्तर–पश्चिमी ज़िला है । यह Lat. 27° 41'N और Long. 77° 41'E के मध्य स्थित है । मथुरा जनपद में चार तहसीलें –माँट, छाता, महावन और मथुरा तथा 10 विकास खण्ड हैं – नन्दगाँव, छाता, चौमुहाँ, गोवर्धन, मथुरा , फ़रह, नौहझील, मांट, राया और बल्देव हैं ।
जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 3329.4 वर्ग कि.मी. है । जनपद की प्रमुख नदी यमुना है , जो उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हुई जनपद की कुल चार तहसीलों मांट, मथुरा, महावन और छाता में से होकर बहती है । यमुना का पूर्वी भाग पर्याप्त उपजाऊ है तथा पश्चिमी भाग अपेक्षाकृत कम उपजाऊ है । इस जनपद की प्रमुख नदी यमुना है, इसकी दो सहायक नदियाँ "करवन" तथा "पथवाहा" हैं । यमुना नदी वर्ष भर बहती है तथा जनपद की प्रत्येक तहसील को छूती हुई बहती है । यह प्रत्येक वर्ष अपना मार्ग बदलती रहती है , जिसके परिणाम स्वरूप हज़ारों हैक्टेयर क्षेत्रफल बाढ़ से प्रभावित हो जाता है । यमुना नदी के किनारे की भूमि खादर है । जनपद की वायु शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्धक है । गर्मियों में अधिक गर्मी और सर्दियों में अधिक सर्दी पड़ना यहाँ की विशेषता है । वर्षा के अलावा वर्ष भर शेष समय मौसम सामान्यतः शुष्क रहता है । मई व जून के महीनों में तेज़ गर्म पश्चिमी हवायें (लू) चलती हैं । जनपद में अधिकांश वर्षा जुलाई व अगस्त माह में होती है । जनपद के पश्चिमी भाग में आजकल बाढ़ का आना सामान्य हो गया है , जिससे काफ़ी क्षेत्र जलमग्न हो जाता है ।

मथुरा संदर्भ

शूरसेन देश की मुख्य नगरी मथुरा के विषय में आज तक कोई वैदिक संकेत नहीं प्राप्त हो सका है। किन्तु ई.पू. पाँचवीं शताब्दी से इसका अस्तित्व सिद्ध हो चुका है। अंगुत्तरनिकाय एवं मज्झिम. में आया है कि बुद्ध के एक महान शिष्य महाकाच्चायन ने मथुरा में अपने गुरु के सिद्धान्तों की शिक्षा दी। मैगस्थनीज़ सम्भवतः मथुरा को जानता था और इसके साथ हरेक्लीज के सम्बन्ध से भी परिचित था। 'माथुर' शब्द जैमिनि के पूर्व मीमांसासूत्र में भी आया है। यद्यपि पाणिनि के सूत्रों में स्पष्ट रूप से 'मथुरा' शब्द नहीं आया है, किन्तु वरणादि-गण में इसका प्रयोग मिलता है। किन्तु पाणिनि को वासुदेव, अर्जुन , यादवों के अन्धक-वृष्णि लोग, सम्भवतः गोविन्द भी ज्ञात थे।
पतंजलि के महाभाष्य में मथुरा शब्द कई बार आया है। कई स्थानों पर वासुदेव द्वारा कंस के नाश का उल्लेख नाटकीय संकेतों, चित्रों एवं गाथाओं के रूप में आया है। उत्तराध्ययनसूत्र में मथुरा को सौर्यपुर कहा गया है, किन्तु महाभाष्य में उल्लिखित सौर्य नगर मथुरा ही है, ऐसा कहना सन्देहात्मक है। आदिपर्व में आया है कि मथुरा अति सुन्दर गायों के लिए उन दिनों प्रसिद्ध थी। जब जरासन्ध के वीर सेनापति हंस एवं डिम्भक यमुना में डूब गये, और जब जरासन्ध दु:खित होकर मगध चला गया तो कृष्ण कहते हैं, 'अब हम पुन: प्रसन्न होकर मथुरा में रह सकेंगे'। अन्त में जरासन्ध के लगातार आक्रमणों से तंग आकर कृष्ण ने यादवों को द्वारका में ले जाकर बसाया।

“वराह पुराण में आया है- विष्णु कहते हैं कि इस पृथिवी या अन्तरिक्ष या पाताल लोक में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो मथुरा के समान मुझे प्यारा हो- मथुरा मेरा प्रसिद्ध क्षेत्र है और मुक्तिदायक है, इससे बढ़कर मुझे कोई अन्य स्थल नहीं लगता। पद्म पुराण में आया है- 'माथुरक नाम विष्णु को अत्यन्त प्रिय है' हरिवंश पुराण ने मथुरा का सुन्दर वर्णन किया है, एक श्लोक यों है- 'मथुरा मध्य-देश का ककुद (अर्थात् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल) है, यह लक्ष्मी का निवास-स्थल है, या पृथिवी का श्रृंग है। इसके समान कोई अन्य नहीं है और यह प्रभूत धन-धान्य से पूर्ण है।'”

ब्रह्म पुराण (14।54-56) में आया है कि कृष्ण की सम्मति से वृष्णियों एवं अन्धकों ने काल यवन के भय से मथुरा का त्याग कर दिया। वायु पुराण का कथन है कि राम के भाई शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण को मार डाला और **मधुवन** में समृद्धिशाली नगर बनाया। घट-जातक में मथुरा को उत्तर मथुरा कहा गया है(दक्षिण के पाण्डवों की नगरी भी मधुरा के नाम से प्रसिद्ध थी), वहाँ कंस एवं वासुदेव की गाथा भी आयी है जो महाभारत एवं पुराणों की गाथा से भिन्न है। रघुवंश में इसे मधुरा नाम से शत्रुघ्न द्वारा स्थापित कहा गया है। ह्वेनसाँग के अनुसार मथुरा में अशोकराज द्वारा तीन स्तूप बनवाये गये थे, पाँच देवमन्दिर थे और बीस संघाराम थे, जिनमें 2000 बौद्ध रहते थे। जेम्स ऐलन का कथन है कि मथुरा के हिन्दू राजाओं के सिक्के ई.पू. द्वितीय शताब्दी के आरम्भ से प्रथम शताब्दी के मध्य भाग तक के हैं। एफ़. एस्. ग्राउस की पुस्तक 'मथुरा' भी द्रष्टव्य है। मथुरा के इतिहास एवं प्राचीनता के विषय में शिलालेख भी प्रकाश डालते हैं। खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में कलिंगराज (खारवेल) की उस विजय का वर्णन हैं, जिसमें **मधुरा** की ओर यवनराज दिमित का भाग जाना उल्लिखित है। कनिष्क, हुविष्क एवं अन्य कुषाण राजाओं के शिलालेख भी पाये जाते हैं, यथा-महाराज राजाधिराज कनिक्ख का नाग-प्रतिमा का शिलालेख; सं. 14 का स्तम्भतल लेख; हुविष्क (सं. 33) के राज्यकाल का बोधिसत्व की प्रतिमा के आधार वाला शिलालेख वासु का शिलालेख; शोडास के काल का शिलालेख एवं मथुरा तथा उसके **आस-पास के सात ब्राह्मी लेख।**
एक अन्य मनोरंजक शिलालेख भी है, जिसमें नन्दिबल एवं मथुरा के अभिनेता (शैलालक) के पुत्रों द्वारा नागेन्द्र दधिकर्ण के मन्दिर में प्रदत्त एक प्रस्तर-खण्ड का उल्लेख है। विष्णु पुराण से प्रकट होता है कि इसके प्रणयन के पूर्व मथुरा में हरि की एक प्रतिमा प्रतिष्ठापित हुई थी। वायु पुराण ने भविष्यवाणी के रूप में कहा है कि मथुरा, प्रयाग, साकेत एवं मगध में गुप्तों के पूर्व सात नाग राजा राज्य करेंगे। अलबरूनी के भारत में आया है कि माहुरा में ब्राह्मणों की भीड़ है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवेचन से प्रकट होता है कि ईसा के 5 या 6 शताब्दियों पूर्व मथुरा एक समृद्धिशाली पुरी थी, जहाँ महाकाव्य-कालीन हिन्दू धर्म प्रचलित था, जहाँ आगे चलकर बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का प्राधान्य हुआ, जहाँ पुन: नागों एवं गुप्तों में हिन्दू धर्म जागरित हुआ, सातवीं शताब्दी में (जब ह्वेनसाँग यहाँ आया था) जहाँ बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म एक-समान पूजित थे और जहाँ पुन: 11वीं शताब्दी में ब्राह्मणवाद प्रधानता को प्राप्त हो गया।
अग्नि पुराण में एक विचित्र बात यह लिखी है कि राम की आज्ञा से भरत ने मथुरा पुरी में शैलूष के तीन कोटि पुत्रों को मार डाला। लगभग दो सहस्त्राब्दियों से अधिक काल तक मथुरा कृष्ण-पूजा एवं भागवत धर्म का केन्द्र रही है। वराह पुराण में मथुरा की महत्ता एवं इसके उपतीर्थों के विषय में लगभग एक सहस्त्र श्लोक पाये जाते हैं, भागवत एवं विष्णु पुराण में कृष्ण, राधा, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन एवं कृष्णलीला के विषय में बहुत-कुछ लिखा गया है।
पद्म पुराण का कथन है कि यमुना जब मथुरा से मिल जाती है तो मोक्ष देती है; यमुना मथुरा में पुण्यफल उत्पन्न करती है और जब यह मथुरा से मिल जाती है तो विष्णु की भक्ति देती है। वराह पुराण में आया है- विष्णु कहते हैं कि इस पृथिवी या अन्तरिक्ष या पाताल लोक में कोई ऐसा स्थान नहीं है जो मथुरा के समान मुझे प्यारा हो- मथुरा मेरा प्रसिद्ध क्षेत्र है और मुक्तिदायक है, इससे बढ़कर मुझे कोई अन्य स्थल नहीं लगता। पद्म पुराण में आया है- 'माथुरक नाम विष्णु को अत्यन्त प्रिय है' हरिवंश पुराण ने मथुरा का सुन्दर वर्णन किया है, एक श्लोक यों है- 'मथुरा मध्य-देश का ककुद (अर्थात् अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल) है, यह लक्ष्मी का निवास-स्थल है, या पृथिवी का श्रृंग है। इसके समान कोई अन्य नहीं है और यह प्रभूत धन-धान्य से पूर्ण है।

मथुरा का परिचय

मथुरा, भगवान कृष्ण की जन्मस्थली और भारत की परम प्राचीन तथा जगद्-विख्यात नगरी है। शूरसेन देश की यहाँ राजधानी थी। पौराणिक साहित्य में मथुरा को अनेक नामों से संबोधित किया गया है जैसे- शूरसेन नगरी, मधुपुरी, मधुनगरी, मधुरा आदि। भारतवर्ष का वह भाग जो हिमालय और विंध्याचल के बीच में पड़ता है, प्राचीनकाल में आर्यावर्त कहलाता था। यहाँ पर पनपी हुई भारतीय संस्कृति को जिन धाराओं ने सींचा वे गंगा और यमुना की धाराएं थीं। इन्हीं दोनों नदियों के किनारे भारतीय संस्कृति के कई केन्द्र बने और विकसित हुए। वाराणसी, प्रयाग, कौशाम्बी, हस्तिनापुर,कन्नौज आदि कितने ही ऐसे स्थान हैं, परन्तु यह तालिका तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक इसमें मथुरा का समावेश न किया जाय। यह आगरा और दिल्ली से क्रमश: 58 कि.मी उत्तर-पश्चिम एवं 145 कि. मी दक्षिण-पश्चिम में यमुना के किनारे राष्ट्रीय राजमार्ग 2 पर स्थित है।
वाल्मीकि रामायण में मथुरा को मधुपुर या मधुदानव का नगर कहा गया है तथा यहाँ लवणासुर की राजधानी बताई गई है-इस नगरी को इस प्रसंग में मधुदैत्य द्वारा बसाई, बताया गया है। लवणासुर, जिसको शत्रुघ्न ने युद्ध में हराकर मारा था इसी मधुदानव का पुत्र था। इससे मधुपुरी या मथुरा का रामायण-काल में बसाया जाना सूचित होता है। रामायण में इस नगरी की समृद्धि का वर्णन है। इस नगरी को लवणासुर ने भी सजाया संवारा था। (दानव, दैत्य, राक्षस आदि जैसे संबोधन विभिन्न काल में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, कभी जाति या क़बीले के लिए, कभी आर्य अनार्य संदर्भ में तो कभी दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों के लिए)। प्राचीनकाल से अब तक इस नगर का अस्तित्व अखण्डित रूप से चला आ रहा है।

शूरसेन जनपद

शूरसेन जनपद का नक्शा

शूरसेन जनपद के नामकरण के संबंध में विद्वानों के अनेक मत हैं किन्तु कोई भी सर्वमान्य नहीं है। शत्रुघ्न के पुत्र का नाम शूरसेन था। जब सीताहरण के बाद सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज में उत्तर दिशा में भेजा तो शतबलि और वानरों से कहा- 'उत्तर में म्लेच्छ' पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल , भरत (इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के आसपास के प्रान्त), कुरु (कुरुदेश) (दक्षिण कुरु- कुरुक्षेत्र के आसपास की भूमि), मद्र, कम्बोज, यवन, शकों के देशों एवं नगरों में भली भाँति अनुसन्धान करके दरद देश में और हिमालय पर्वत पर ढूँढ़ो। इससे स्पष्ट है कि शत्रुघ्न के पुत्र से पहले ही 'शूरसेन' जनपद नाम अस्तित्व में था। हैहयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन के सौ पुत्रों में से एक का नाम शूरसेन था और उसके नाम पर यह

शूरसेन राज्य का नामकरण होने की संम्भावना भी है, किन्तु हैहयवंशी कार्तवीर्य अर्जुन का मथुरा से कोई सीधा संबंध होना स्पष्ट नहीं है। महाभारत के समय में मथुरा शूरसेन देश की प्रख्यात नगरी थी। लवणासुर के वधोपरांत शत्रुघ्न ने इस नगरी को पुन: बसाया था। उन्होंने मधुवन के जंगलों को कटवा कर उसके स्थान पर नई नगरी बसाई थी। यहीं कृष्ण का जन्म(श्री कृष्ण जन्मस्थान), यहाँ के अधिपति कंस के कारागार में हुआ तथा उन्होंने बचपन ही में अत्याचारी कंस का वध करके देश को उसके अभिशाप से छुटकारा दिलवाया। कंस की मृत्यु के बाद श्री कृष्ण मथुरा ही में बस गए किंतु जरासंध के आक्रमणों से बचने के लिए उन्होंने मथुरा छोड़ कर द्वारका पुरी बसाई दशम सर्ग, 58 में मथुरा पर कालयवन के आक्रमण का वृतांत है। इसने तीन करोड़ म्लेच्छों को लेकर मथुरा को घेर लिया था।

शूरसेन जनपद की सीमा

प्राचीन शूरसेन जनपद का विस्तार दक्षिण में चंबल नदी से लेकर उत्तर में वर्तमान मथुरा नगर से 75 कि. मी. उत्तर में स्थित कुरु(कुरुदेश) राज्य की सीमा तक था। उसकी सीमा पश्चिम में मत्स्य और पूर्व में पांचाल जनपद से मिलती थी। मथुरा नगर को महाकाव्यों एवं पुराणों में 'मथुरा' एवं `मधुपुरी' नामों से संबोधित किया गया है। विद्वानों ने `मधुपुरी' की पहचान मथुरा के 6 मील पश्चिम में स्थित वर्तमान 'महोली' से की है। प्राचीन काल में यमुना नदी मथुरा के पास से गुजरती थी, आज भी इसकी स्थिति यही है। प्लिनी ने यमुना को जोमेनस कहा है, जो मेथोरा और क्लीसोबोरा के मध्य बहती थी।

प्राचीन साहित्य में मथुरा

हरिवंश पुराण में भी मथुरा के विलास-वैभव का मनोहर चित्र है।विष्णु पुराण में भी मथुरा का उल्लेख है, विष्णु-पुराण में शत्रुघ्न द्वारा पुरानी मथुरा के स्थान पर ही नई नगरी के बसाए जाने का उल्लेख है । इस समय तक मधुरा नाम का रूपांतर मथुरा प्रचलित हो गया था। कालिदास ने रघुवंश में इंदुमती के स्वंयवर के प्रसंग में शूरसेनाधिपति सुषेण की राजधानी मथुरा में वर्णित की है। इसके साथ ही गोवर्धन का भी उल्लेख है। मल्लिनाथ ने 'मथुरा` की टीका करते हुए लिखा है`-'कालिंदीतीरे मथुरा लवणासुरवधकाले शत्रुघ्नेन निर्मास्यतेति वक्ष्यति` ।
प्राचीन ग्रंथों-हिन्दू, बौद्ध, जैन एवं यूनानी साहित्य में इस जनपद का शूरसेन नाम अनेक स्थानों पर मिलता है। प्राचीन ग्रंथों में मथुरा का मेथोरा, मदुरा, मत-औ-लौ, मो-तु-लो तथा सौरीपुर (सौर्यपुर) नामों का भी उल्लेख मिलता है। इन उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की संज्ञा ईसवी सन् के आरम्भ तक जारी रही और शक-कुषाणों के प्रभुत्व के साथ ही इस जनपद की संज्ञा राजधानी के नाम पर `मथुरा' हो गई। इस परिवर्तन का मुख्य कारण था कि यह नगर शक-कुषाणकालीन समय में इतनी प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुका था कि लोग जनपद के नाम को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे और कालांतर में जनपद का शूरसेन नाम जनसाधारण के स्मृतिपटल से विस्मृत हो गया।

पुराणों में मथुरा

पुराणों में मथुरा के गौरवमय इतिहास का विषद विवरण मिलता है। अनेक धर्मों से संबंधित होने के कारण मथुरा में बसने और रहने का महत्त्व क्रमश: बढ़ता रहा। ऐसी मान्यता थी कि यहाँ रहने से पाप रहित हो जाते हैं तथा इसमें रहने करने वालों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। वराह पुराण में कहा गया है कि इस नगरी में जो लोग शुध्द विचार से निवास करते हैं, वे मानव के रूप में साक्षात देवता हैं। श्राद्ध कर्म का विशेष फल मथुरा में प्राप्त होता है। मथुरा में श्राद्ध करने वालों के पूर्वजों को आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने मथुरा में तपस्या कर के नक्षत्रों में स्थान प्राप्त किया था। पुराणों में मथुरा की महिमा का वर्णन है। पृथ्वी के यह पूछने पर कि मथुरा जैसे तीर्थ की महिमा क्या है? महावराह ने कहा था- "मुझे इस वसुंधरा में पाताल अथवा अंतरिक्ष से भी मथुरा अधिक प्रिय है। वराह पुराण में भी मथुरा के संदर्भ में उल्लेख मिलता है, यहाँ की भौगोलिक स्थिति का वर्णन मिलता है। यहाँ मथुरा की माप बीस योजन बतायी गयी है। इस मंडल में मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन आदि नगर, ग्राम एवं मंदिर, तड़ाग, कुण्ड, वन एवं अनगणित तीर्थों के होने का विवरण मिलता है। इनका विस्तृत वर्णन पुराणों में मिलता है। गंगा के समान ही यमुना के गौरवमय महत्त्व का भी विशद विवरण किया गया है। पुराणों में वर्णित राजाओं के शासन एवं उनके वंशों का भी वर्णन प्राप्त होता है।
ब्रह्म पुराण में वृष्णियों एवं अंधकों के स्थान मथुरा पर, राक्षसों के आक्रमण का भी विवरण मिलता है। वृष्णियों एवं अंधकों ने डर कर मथुरा को छोड़ दिया था और उन्होंने अपनी राजधानी द्वारावती (द्वारिका) में प्रतिष्ठित की थी। मगध नरेश जरासंध ने 23 अक्षौहिणी सेना से इस नगरी को घेर लिया था। अपने महाप्रस्थान के समय युधिष्ठर ने मथुरा के सिंहासन पर वज्रनाभ को आसीन किया। सात नाग-नरेश गुप्तवंश के उत्कर्ष के पूर्व यहाँ पर राज्य कर रहे थे।
उग्रसेन और कंस मथुरा के शासक थे जिस पर अंधकों के उतराधिकारी राज्य करते थे।कालान्तर में शत्रुघ्न के पुत्रों को मथुरा से सात्वत भीम ने निकाला तथा उसने तथा उसके पुत्रों ने यहाँ पर राज्य किया। शूरसेन ने जो शत्रुघ्न का पुत्र था, उसने यमुना के पश्चिम में बसे हुए सात्वत यादवों पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक माधव लवण का वध करके मथुरा नगरी को अपनी राजधानी घोषित किया। मथुरा की स्थापना श्रावण महीने में होने के कारण ही संभवत: इस माह में उत्सव आदि करने की परंपरा है। पुरातन काल में ही यह नगरी इतनी वैभवशाली थी कि मथुरा नगरी को देवनिर्मिता कहा जाने लगा था। मथुरा के महाभारत काल के राजवंश को यदु अथवा यदुवंशीय कहा जाता है। यादव वंश में मुख्यत: दो वंश हैं। जिन्हें-वीतिहोत्र एवं सात्वत के नाम से जाना जाता है। सात्वत वर्ग भी कई शाखाओं में बँटा हुआ था। जिनमें वृष्णि, अंधक, देवावृद्ध तथा महाभोज प्रमुख थे। यदु और यदु वंश का प्रमाण ऋग्वेद में भी मिलता है। इस वंश का संबंध तुर्वश, द्रुह, अनु एवं पुरु से था।से ज्ञात होता है

कि यदु तुर्वश किसी दूरस्थ प्रदेश से यहाँ आए थे। वैदिक साहित्य में सात्वतों का भी नाम आता है। शतपथ ब्राह्मण में आता है कि एक बार भरतवंशी शासकों ने सात्वतों से उनके यज्ञ का घोड़ा छीन लिया था। भरतवंशी शासकों द्वारा सरस्वती, यमुना और गंगा के तट पर यज्ञ किए जाने के वर्णन से राज्य की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। सात्वतों का राज्य भी समीपवर्ती क्षेत्रों में ही रहा होगा। इस प्रकार महाभारत एवं पुराणों में वर्णित सात्वतों का मथुरा से संबंध स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है।

मथुरा मण्डल

मथुरा का मण्डल 20 योजनों तक विस्तृत था और इसमें मथुरा पुरी बीच में स्थित थी। वराह पुराण एवं नारदीय पुराण(उत्तरार्ध, अध्याय 79-80) ने मथुरा एवं इसके आसपास के तीर्थों का उल्लेख किया है। वराह पुराण एवं नारदीय पुराण ने मथुरा के पास के 12 वनों की चर्चा की है, यथा- मधुवन, तालवन, कुमुदवन, काम्यवन, बहुलावन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लौहजंघवन, बिल्व, भांडीरवन एवं वृन्दावन। 24 उपवन भी थे जिन्हें पुराणों ने नहीं, प्रत्युत पश्चात्कालीन ग्रन्थों ने वर्णित किया है।

वृन्दावन यमुना के किनारे मथुरा के उत्तर-पश्चिम में था और विस्तार में पाँच योजन था (विष्णु पुराण 5।6।28-40, नारदीय पुराण, उत्तरार्ध 80।6,8 एवं 77)। यही कृष्ण की लीला-भूमि थी। पद्म पुराण (4।69।9) ने इसे पृथ्वी पर वैकुण्ठ माना है। मत्स्य. (13।38) ने राधा को वृन्दावन में देवी दाक्षायणी माना है। कालिदास के काल में यह प्रसिद्ध था। रघुवंश (6) में नीप कुल के एवं शूरसेन के राजा सुषेण का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृन्दावन कुबेर की वाटिका चित्ररथ से किसी प्रकार सुन्दरता में कम नहीं है। इसके उपरान्त गोवर्धन की महत्ता है, जिसे कृष्ण ने अपनी कनिष्ठा अंगुली पर इन्द्र द्वारा भेजी गयी वर्षा से गोप-गोपियों एवं उनके पशुओं को बचाने के लिए उठाया था।

वराहपुराण (164।1) में आया है कि गोवर्धन मथुरा से पश्चिम लगभग दो योजन हैं। यह कुछ सीमा तक ठीक है, क्योंकि आजकल वृन्दावन से यह 18 मील है। कूर्म पुराण (1।14।18) का कथन है कि प्राचीन राजा पृथु ने यहाँ तप किया था। हरिवंश एवं पुराणों की चर्चाएँ कभी-कभी ऊटपटाँग एवं एक-दूसरे के विरोध में पड़ जाती हैं। उदाहरणार्थ, हरिवंश (विष्णुपर्व 13।3) में तालवन गोवर्धन से उत्तर यमुना पर कहा गया है, किन्तु वास्तव में यह गोवर्धन से दक्षिण-पूर्व में है। कालिदास (रघुवंश 6।51) ने गोवर्धन की गुफ़ाओं (या गुहाओं कन्दराओं) का उल्लेख किया है। गोकुल ब्रज या महावन है जहाँ कृष्ण बचपन में नन्द-गोप द्वारा पालित-पोषित हुए थे। कंस के भय से नन्द-गोप गोकुल से वृन्दावन चले आये थे। चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन आये थे। 16वीं शताब्दी में वृन्दावन के गोस्वामियों, विशेषत: सनातन, रूप एवं जीव के ग्रन्थों के कारण वृन्दावन चैतन्य-भक्ति-सम्प्रदाय का केन्द्र था। चैतन्य के समकालीन वल्लभाचार्य एक दूसरे से वृन्दावन में मिले थे। मथुरा के प्राचीन मन्दिरों को औरंगजेब ने बनारस के मन्दिरों की भाँति नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

सभापर्व (319।23-24) में ऐसा आया है कि जरासंघ ने गिरिव्रज (मगध की प्राचीन राजधानी, राजगिर) से अपनी गदा फेंकी और वह 99 योजन की दूरी पर कृष्ण के समक्ष मथुरा में गिरी, जहाँ वह गिरी वह स्थान 'गदावसान' के नाम से विश्रुत हुआ। वह नाम कहीं और नहीं मिलता।

ग्राउस ने मथुरा नामक पुस्तक में वृन्दावन के मन्दिरों एवं गोवर्धन, बरसाना, राधा के जन्म-स्थान एवं नन्दगाँव का उल्लेख किया है। मथुरा एवं उसके आसपास के तीर्थ-स्थलों का डब्लू. एस. कैने कृत 'चित्रमय भारत' में भी वर्णन है।

संस्कृति

यहाँ के वन–उपवन, कुन्ज–निकुन्ज, श्री यमुना व गिरिराज अत्यन्त मोहक हैं । पक्षियों का मधुर स्वर एकांकी स्थली को मादक एवं मनोहर बनाता है । मोरों की बहुतायत तथा उनकी पिऊ–पिऊ की आवाज से वातावरण गुन्जायमान रहता है । बाल्यकाल से ही भगवान श्रीकृष्ण की सुन्दर मोर के प्रति विशेष कृपा तथा उसके पंखों को शीष मुकुट के रूप में धारण करने से स्कन्द वाहन स्वरूप मोर को भक्ति साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान मिला है । सरकार ने मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित कर इसे संरक्षण दिया है ।

“वराह पुराण एवं नारदीय पुराण ने मथुरा के पास के 12 वनों की चर्चा की है, यथा- मधुवन, तालवन, कुमुदवन, काम्यवन, बहुलावन, भद्रवन, खदिरवन, महावन, लौहजंघवन, बिल्व, भांडीरवन एवं वृन्दावन। 24 उपवन भी थे जिन्हें पुराणों ने नहीं, प्रत्युत पश्चात्कालीन ग्रन्थों ने वर्णित किया है।”

ब्रज की महत्ता प्रेरणात्मक, भावनात्मक व रचनात्मक है तथा साहित्य और कलाओं के विकास के लिए यह उपयुक्त स्थली है । संगीत, नृत्य एवं अभिनय ब्रज संस्कृति के प्राण बने हैं । ब्रजभूमि अनेकानेक मठों, मूर्तियों, मन्दिरों, महंतो, महात्माओं और महामनीषियों की महिमा से वन्दनीय है । यहाँ सभी सम्प्रदायों की आराधना स्थली है । ब्रज की रज का महात्म्य भक्तों के लिए सर्वोपरि है । इसीलिए ब्रज चौरासी कोस में 21 किलोमीटर की गोवर्धन–राधाकुण्ड, 27 किलोमीटर की गरूणगोविन्द–वृन्दावन, 5–5कोस की मथुरा–वृन्दावन, 15–15 किलोमीटर की मथुरा, वृन्दावन, 6–6 किलोमीटर नन्दगांव, बरसाना, बहुलावन, भांडीरवन, 9 किलोमीटर की गोकुल, 7.5 किलोमीटर की बल्देव, 4.5–4.5 किलोमीटर की मधुवन, लोहवन, 2 किलोमीटर की तालवन, 1.5 किलोमीटर की कुमुदवन की नंगे पांव तथा दण्डोती परिक्रमा लगाकर श्रृद्धालु धन्य होते हैं । प्रत्येक त्योहार, उत्सव, ऋतु माह एवं दिन पर परिक्रमा देने का ब्रज में विशेष प्रचलन है । देश के कोने–कोने से आकर श्रृद्धालु ब्रज परिक्रमाओं को धार्मिक कृत्य और अनुष्ठान मानकर अति श्रद्धा भक्ति के साथ करते हैं । इनसे नैसर्गिक चेतना, धार्मिक परिकल्पना, संस्कृति के अनुशीलन उन्नयन, मौलिक व मंगलमयी प्रेरणा प्राप्त होती है । आषाढ़ तथा अधिक मास में गोवर्धन पर्वत परिक्रमा हेतु लाखों श्रद्धालु आते हैं । ऐसी अपार भीड़ में भी राष्ट्रीय एकता और सद्भावना के दर्शन होते हैं । भगवान श्रीकृष्ण, बलदाऊ की लीला स्थली का दर्शन तो श्रद्धालुओं के लिए प्रमुख है ही यहाँ अक्रूर जी, उद्धव जी, नारद जी, ध्रुव जी और वज्रनाथ जी की यात्रायें भी उल्लेखनीय हैं ।

ब्रज की जीवन शैली

परम्परागत रूप से ब्रजवासी सानन्द जीवन व्यतीत करते हैं । नित्य स्नान, भजन, मन्दिर गमन, दर्शन–झांकी करना, दीन–दुखियों की सहायता करना, अतिथि सत्कार, लोकोपकार के कार्य, पशु–पक्षियों के प्रति प्रेम, नारियों का सम्मान व सुरक्षा, बच्चों के प्रति स्नेह , उन्हें अच्छी शिक्षा देना तथा लौकिक व्यवहार कुशलता उनकी जीवन शैली के अंग बन चुके हैं । यहाँ कन्या को देवी के समान पूज्य माना जाता है । ब्रज वनितायें पति के साथ दिन–रात कार्य करते हुए कुल की मर्यादा रखकर पति के साथ रहने में अपना जीवन सार्थक मानती है । संयुक्त परिवार प्रणाली साथ रहने, कार्य करने ,एक–दूसरे का ध्यान रखने, छोटे–बड़े के प्रति यथोचित सम्मान , यहाँ की समाजिक व्यवस्था में परिलक्षित होता है । सत्य और संयम ब्रज लोक जीवन के प्रमुख अंग हैं । यहाँ कार्य के सिद्धान्त की महत्ता है और जीवों में परमात्मा का अंश मानना ही दिव्य दृष्टि है ।

महिलाओं की मांग में सिंदूर, माथे पर बिन्दी, नाक में लौंग या बाली, कानों में कुण्डल या झुमकी–झाली, गले में मंगल सूत्र, हाथों में चूड़ी, पैरों में बिछुआ–चुटकी, महावर और पायजेब या तोड़िया उनकी सुहाग की निशानी मानी जाती हैं । विवाहित महिलायें अपने पति परिवार और गृह की मंगल कामना हेतु करवा चौथ का व्रत करती हैं, पुत्रवती नारियां संतान के मंगलमय जीवन हेतु अहोई अष्टमी का व्रत रखती हैं । स्वर्गस्तक सतिया चिन्ह यहाँ सभी मांगलिक अवसरों पर बनाया जाता है और शुभ अवसरों पर नारियल का प्रयोग किया जाता है ।

देश के कोने–कोने से लोग यहाँ पर्वों पर एकत्र होते हैं । जहां विविधता में एकता के साक्षात दर्शन होते हैं । ब्रज में प्राय: सभी मन्दिरों में रथयात्रा का उत्सव होता है । चैत्र मास में वृन्दावन में रंगनाथ जी की सवारी विभिन्न वाहनों पर निकलती है । जिसमें देश के कोने–कोने से आकर भक्त सम्मिलित होते हैं । ज्येष्ठ मास में गंगा दशहरा के दिन प्रात: काल से ही विभिन्न अंचलों से श्रद्धालु आकर यमुना में स्नान करते हैं । इस अवसर पर भी विभिन्न प्रकार की वेशभूषा और शिल्प के साथ राष्ट्रीय एकता के दर्शन होते हैं , इस दिन छोटे–बड़े सभी कलात्मक ढंग की रंगीन पतंग उड़ाते हैं ।

आषाढ़ मास में गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा हेतु प्राय: सभी क्षेत्रों से यात्री गोवर्धन आते हैं, जिसमें आभूषणों, परिधानों आदि से क्षेत्र की शिल्प कला उद्‌भाषित होती है । श्रावण मास में हिन्डोलों के उत्सव में विभिन्न प्रकार से कलात्मक ढंग से सज्जा की जाती है । भाद्रपद में मन्दिरों में विशेष कलात्मक झांकियां तथा सजावट होती है । आश्विन माह में सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र में कन्याएं घर की दीवारों पर गोबर से विभिन्न प्रकार की कृतियां बनाती हैं, जिनमें कौड़ियों तथा रंगीन चमकदार काग़ज़ों के आभूषणों से अपनी सांझी को कलात्मक ढंग से सजाकर आरती करती हैं । इसी माह से मन्दिरों में काग़ज़ के सांचों से सूखे रंगों की वेदी का निर्माण कर उस पर अल्पना बनाते हैं । इसको भी 'सांझी' कहते हैं। कार्तिक मास तो श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से परिपूर्ण रहता है । अक्षय तृतीया तथा देवोत्थान एकादशी को मथुरा तथा वृन्दावन की परिक्रमा लगाई जाती है । बसंत पंचमी को सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र बसन्ती होता है। फाल्गुन मास में तो जिधर देखो उधर नगाड़ों , झांझ पर चौपाई तथा होली के रसिया की ध्वनियां सुनाई देती हैं। नन्दगांव तथा बरसाना की लठामार होली, दाऊजी का हुरंगा जगत प्रसिद्ध है।

ब्रज का प्राचीन संगीत

ब्रज के प्राचीन संगीतज्ञों की प्रामाणिक जानकारी 16वीं शताब्दी के भक्तिकाल से मिलती है । इस काल में अनेकों संगीतज्ञ वैष्णव संत हुए । संगीत शिरोमणि स्वामी हरिदास जी, इनके गुरु आशुधीर जी तथा उनके शिष्य तानसेन आदि का नाम सर्वविदित है । बैजूबावरा के गुरु भी श्री हरिदास जी कहे जाते हैं, किन्तु बैजू बावरा ने अष्टछाप के कवि संगीतज्ञ गोविन्द स्वामी जी से ही संगीत का अभ्यास किया था । निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट जी इसी काल में भक्त, कवि और संगीतज्ञ हुए । अष्टछाप के महासंगीतज्ञ कवि सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास जी आदि भी इसी काल में प्रसिद्ध कीर्तनकार, कवि और गायक हुए, जिनके कीर्तन बल्लभकुल के मन्दिरों में गाये जाते हैं । स्वामी हरिदास जी ने ही वस्तुत: ब्रज–संगीत के ध्रुपद–धमार की गायकी और रास–नृत्य की परम्परा चलाई ।

संगीत

मथुरा में संगीत का प्रचलन बहुत पुराना है, बांसुरी ब्रज का प्रमुख वाद्‌य यंत्र है । भगवान श्रीकृष्ण की बांसुरी को जन–जन जानता है और इसी को लेकर उन्हें मुरलीधर और वंशीधर आदि नामों से पुकारा जाता है । वर्तमान में भी ब्रज के लोकसंगीत में ढोल मृदंग, झांझ, मंजीरा, ढप, नगाड़ा,पखावज, एकतारा आदि वाद्‌य यंत्रों का प्रचलन है । 16 वीं शती से मथुरा में रास के वर्तमान रूप का प्रारम्भ हुआ । यहाँ सबसे पहले बल्लभाचार्य जी ने स्वामी हरदेव के सहयोग से विश्रांत घाट पर रास किया । रास ब्रज की अनोखी देन है, जिसमें संगीत के गीत गद्‌य तथा नृत्य का समिश्रण है । ब्रज के साहित्य के सांस्कृतिक एवं कलात्मक जीवन को रास बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है । अष्टछाप के कवियों के समय ब्रज में संगीत की मधुरधारा प्रवाहित हुई । सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास आदि स्वयं गायक थे । इन कवियों ने अपनी रचनाओं में विविध प्रकार के गीतों का अपार भण्डार भर दिया ।

स्वामी हरिदास संगीत शास्त्र के प्रकाण्ड आचार्य एवं गायक थे । तानसेन जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ भी उनके शिष्य थे । सम्राट अकबर भी स्वामी जी के मधुर संगीत- गीतों को सुनने का लोभ संवरण न कर सका और इसके लिए भेष बदलकर उन्हें सुनने वृन्दावन आया करता था । मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, गोवर्धन लम्बे समय तक संगीत के केन्द्र बने रहे और यहाँ दूर से संगीत कला सीखने आते रहे ।

मथुरा ज़िले के प्रमुख मन्दिर

भगवान श्रीकृष्ण के जन्म स्थान पर महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी की प्रेरणा से एक विशाल मन्दिर बना है । यह देशी–विदशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है । मन्दिर में भगवान श्रीकृष्ण का सुन्दर विग्रह है । समीप ही सुविधा युक्त अतिथि ग्रह तथा धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय है । अतिथि ग्रह के निकट विशाल भागवत भवन है । यहाँ शोध पीठ एवं बाल मन्दिर भी है । इसके पीछे केशवदेव जी का प्राचीन मन्दिर भी स्थित है ।

नाम	संक्षिप्त विवरण	चित्र
कृष्ण जन्मभूमि	भगवान श्री कृष्ण की जन्मभूमि का ना केवल राष्ट्रीय स्तर पर महत्व है बल्कि वैश्विक स्तर पर मथुरा जनपद भगवान श्रीकृष्ण के जन्मस्थान से ही जाना जाता है। आज वर्तमान में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी की प्रेरणा से यह एक भव्य आकर्षण मन्दिर के रूप में स्थापित है। पर्यटन की दृष्टि से विदेशों से भी भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए यहाँ प्रतिदिन आते हैं	
द्वारिकाधीश मन्दिर	मथुरा नगर के राजाधिराज बाज़ार में स्थित यह मन्दिर अपने सांस्कृतिक वैभव कला एवं सौन्दर्य के लिए अनुपम है। ग्वालियर राज के कोषाध्यक्ष सेठ गोकुल दास पारीख ने इसका निर्माण 1814–15 में प्रारम्भ कराया, जिनकी मृत्यु पश्चात इनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी सेठ लक्ष्मीचन्द्र ने मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण कराया	
राजकीय संग्रहालय	मथुरा का यह विशाल संग्रहालय डेम्पीयर नगर, मथुरा में स्थित है। भारतीय कला को मथुरा की यह विशेष देन है । भारतीय कला के इतिहास में यहीं पर सर्वप्रथम हमें शासकों की लेखों से अंकित मानवीय आकारों में बनी प्रतिमाएं दिखलाई पड़ती हैं	
बांके बिहारी मन्दिर	बांके बिहारी मंदिर मथुरा ज़िले के वृंदावन धाम में रमण रेती पर स्थित है। यह भारत के प्राचीन और प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। बांके बिहारी कृष्ण का ही एक रूप है जो इसमें प्रदर्शित किया गया है। कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण स्वामी श्री हरिदास जी के वंशजो के सामूहिक प्रयास से संवत 1921 के लगभग किया गया	
रंग नाथ जी मन्दिर	श्री सम्प्रदाय के संस्थापक रामानुजाचार्य के विष्णु-स्वरूप भगवान रंगनाथ या रंगजी के नाम से रंग जी का मन्दिर सेठ लखमीचन्द के भाई सेठ गोविन्ददास और राधाकृष्ण दास द्वारा निर्माण कराया गया था। उनके महान गुरु संस्कृत के आचार्य स्वामी रंगाचार्य द्वारा दिये गये मद्रास के रंग नाथ मन्दिर की शैली के मानचित्र के आधार पर यह बना था। इसकी बाहरी दीवार की लम्बाई 773 फीट और चौड़ाई 440 फीट है	
गोविन्द देव मन्दिर	गोविन्द देव जी का मंदिर वृंदावन में स्थित वैष्णव संप्रदाय का मंदिर है। मंदिर का निर्माण ई. 1590 में तथा इसे बनाने में 5 से 10 वर्ष लगे। मंदिर की भव्यता का अनुमान इस उद्धरण से लगाया जा सकता है औरंगज़ेब ने शाम को टहलते हुए, दक्षिण-पूर्व में दूर से दिखने वाली रौशनी के बारे जब पूछा तो पता चला कि यह चमक वृन्दावन के वैभवशाली मंदिरों की है	
इस्कॉन मन्दिर	वृन्दावन के आधुनिक मन्दिरों में यह एक भव्य मन्दिर है। इसे अंग्रेज़ों का मन्दिर भी कहते हैं। केसरिया वस्त्रों में हरे रामा–हरे कृष्णा की धुन में तमाम विदेशी महिला–पुरुष यहाँ देखे जाते हैं। मन्दिर में राधा कृष्ण की भव्य प्रतिमायें हैं और अत्याधुनिक सभी सुविधायें हैं	

मदन मोहन मन्दिर	श्रीकृष्ण भगवान के अनेक नामों में से एक प्रिय नाम मदनमोहन भी है। इसी नाम से एक मंदिर मथुरा ज़िले के वृंदावन धाम में विद्यमान है। विशालकायिक नाग के फन पर भगवान चरणाघात कर रहे हैं। पुरातनता में यह मंदिर गोविन्द देव जी के मंदिर के बाद आता है	
दानघाटी मंदिर	मथुरा–डीग मार्ग पर गोवर्धन में यह मन्दिर स्थित है। गिर्राजजी की परिक्रमा हेतु आने वाले लाखों श्रृद्धालु इस मन्दिर में पूजन करके अपनी परिक्रमा प्रारम्भ कर पूर्ण लाभ कमाते हैं। ब्रज में इस मन्दिर की बहुत महत्ता है। यहाँ अभी भी इस पार से उसपार या उसपार से इस पार करने में टोल टैक्स देना पड़ता है। कृष्णलीला के समय कृष्ण ने दानी बनकर गोपियों से प्रेमकलह कर नोक–झोंक के साथ दानलीला की है	
मानसी गंगा	गोवर्धन गाँव के बीच में श्री मानसी गंगा है। परिक्रमा करने में दायीं और पड़ती है और पूंछरी से लौटने पर भी दायीं और इसके दर्शन होते हैं। मानसी गंगा के पूर्व दिशा में- श्री मुखारविन्द, श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, श्री किशोरीश्याम मन्दिर, श्री गिरिराज मन्दिर, श्री मन्महाप्रभु जी की बैठक, श्री राधाकृष्ण मन्दिर स्थित हैं .... और पढ़ें	
कुसुम सरोवर	मथुरा में गोवर्धन से लगभग 2 किलोमीटर दूर राधाकुण्ड के निकट स्थापत्य कला के नमूने का एक समूह जवाहर सिंह द्वारा अपने पिता सूरजमल (ई.1707-1763) की स्मृति में बनवाया गया। कुसुम सरोवर गोवर्धन के परिक्रमा मार्ग में स्थित एक रमणीक स्थल है जो अब सरकार के संरक्षण में है	
जयगुरुदेव मन्दिर	मथुरा में आगरा-दिल्ली राजमार्ग पर स्थित जय गुरुदेव आश्रम की लगभग डेढ़ सौ एकड़ भूमि पर संत बाबा जय गुरुदेव की एक अलग ही दुनिया बसी हुई है। उनके देश विदेश में 20 करोड़ से भी अधिक अनुयायी हैं। उनके अनुयायियों में अनपढ़ किसान से लेकर प्रबुद्ध वर्ग तक के लोग हैं	
राधा रानी मंदिर	इस मंदिर को बरसाने की लाड़ली जी का मंदिर भी कहा जाता है। राधा का यह प्राचीन मंदिर मध्यकालीन है जो लाल और पीले पत्थर का बना है। राधा-कृष्ण को समर्पित इस भव्य और सुन्दर मंदिर का निर्माण राजा वीर सिंह ने 1675 में करवाया था। बाद में स्थानीय लोगों द्वारा पत्थरों को इस मंदिर में लगवाया।	
नन्द जी मंदिर	नन्द जी का मंदिर, नन्दगाँव में स्थित है। नन्दगाँव ब्रजमंडल का प्रसिद्ध तीर्थ है। गोवर्धन से 16 मील पश्चिम उत्तर कोण में, कोसी से 8 मील दक्षिण में तथा वृन्दावन से 28 मील पश्चिम में नन्दगाँव स्थित है। नन्दगाँव की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) चार मील की है। यहाँ पर कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित 56 कुण्ड हैं। जिनके दर्शन में 3–4 दिन लग जाते हैं	

कृष्ण जन्मभूमि

कृष्ण जन्मभूमि, मथुरा

भगवान श्री कृष्ण की जन्मभूमि का ना केवल राष्ट्रीय स्तर पर महत्व है बल्कि वैश्विक स्तर पर जनपद मथुरा भगवान श्रीकृष्ण के जन्मस्थान से ही जाना जाता है। आज वर्तमान में महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी की प्रेरणा से यह एक भव्य आकर्षण मन्दिर के रूप में स्थापित है। पर्यटन की दृष्टि से विदेशों से भी भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए यहाँ प्रतिदिन आते हैं। भगवान श्रीकृष्ण को विश्व में बहुत बड़ी संख्या में नागरिक आराध्य के रूप में मानते हुए दर्शनार्थ आते हैं।

भगवान केशवदेव का मन्दिर, श्रीकृष्ण जन्मभूमि

भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी इहलौकिक लीला संवरण की। उधर युधिष्ठर महाराज ने परीक्षित को हस्तिनापुर का राज्य सौंपकर श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ को मथुरा मंडल के राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। चारों भाइयों सहित युधिष्ठिर स्वयं महाप्रस्थान कर गये। महाराज वज्रनाभ ने महाराज परीक्षित और महर्षि शांडिल्य के सहयोग से मथुरा मंडल की पुन: स्थापना करके उसकी सांस्कृतिक छवि का पुनरूद्वार किया। वज्रनाभ द्वारा जहाँ अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया गया, वहीं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की जन्मस्थली का भी महत्व स्थापित किया। यह कंस का कारागार था, जहाँ वासुदेव ने भाद्रपद कृष्ण अष्टमी की आधी रात अवतार ग्रहण किया था। आज यह कटरा केशवदेव नाम से प्रसिद्व है। यह कारागार केशवदेव के मन्दिर के रूप में परिणत हुआ। इसी के आसपास मथुरा पुरी सुशोभित हुई। यहाँ कालक्रम में अनेकानेक गगनचुम्बी भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। इनमें से कुछ तो समय के साथ नष्ट हो गये और कुछ को विधर्मियों ने नष्ट कर दिया ।

राधा-कृष्ण, कृष्ण जन्मभूमि, मथुरा पोतरा कुण्ड, मथुरा

प्रथम मन्दिर

ईसवी सन् से पूर्ववर्ती 80-57 के महाक्षत्रप सौदास के समय के एक शिला लेख से ज्ञात होता है कि किसी वसु नामक व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक मंदिर तोरण द्वार और वेदिका का निर्माण कराया था। यह शिलालेख ब्राहमी लिपि में है।

द्वितीय मन्दिर

दूसरा मन्दिर विक्रमादित्य के काल में सन् 800 ई॰ के लगभग बनवाया गया था। संस्कृति और कला की दृष्टि से उस समय मथुरा नगरी बड़े उत्कर्ष पर थी। हिन्दू धर्म के साथ बौद्ध और जैन धर्म भी उन्नति पर थे। श्रीकृष्ण जन्मस्थान के संमीप ही जैनियों और बौद्धों के विहार और मन्दिर बने थे। यह मन्दिर सन 1017-18 ई॰ में महमूद ग़ज़नवी के कोप का भाजन बना। इस भव्य सांस्कृतिक नगरी की सुरक्षा की कोई उचित व्यवस्था न होने से महमूद ने इसे ख़ूब लूटा। भगवान केशवदेव का मन्दिर भी तोड़ डाला गया।

तृतीय मन्दिर

संस्कृत के एक शिला लेख से ज्ञात होता है कि महाराजा विजयपाल देव जब मथुरा के शासक थे, तब सन 1150 ई॰ में जज्ज नामक किसी व्यक्ति ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया था। यह विशाल एवं भव्य बताया जाता हैं। इसे भी 16 वी शताब्दी के आरम्भ में सिकन्दर लोदी के शासन काल में नष्ट कर डाला गया था।

चतुर्थ मन्दिर

जहाँगीर के शासन काल में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर पुन: एक नया विशाल मन्दिर निर्माण कराया ओरछा के शासक राजा वीरसिंह जू देव बुन्देला ने इसकी ऊँचाई 250 फीट रखी गई थी। यह आगरा से दिखाई देता बताया जाता है। उस समय इस निर्माण की लागत 33 लाख रुपये आई थी। इस मन्दिर के चारों ओर एक ऊँची दीवार का परकोटा बनवाया गया था, जिसके अवशेष अब तक विद्यमान हैं। दक्षिण पश्चिम के एक कोने में कुआ भी बनवाया गया था इस का पानी 60 फीट ऊँचा उठाकर मन्दिर के प्रागण में फब्बारे चलाने के काम आता था। यह कुआँ और उसका बुर्ज आज तक विद्यमान है। सन 1669 ई॰ में पुन: यह मन्दिर नष्ट कर दिया गया और इसकी भवन सामग्री से ईदगाह बनवा दी गई जो

आज विद्यमान है। जन्मस्थान की ऐतिहासिक झाँकी पिछले पृष्ठों में दी जा चुकी है। यहाँ वर्तमान मन्दिर के निर्माण का इतिहास देना आवश्यक है।

जन्मस्थान का पुनरुद्वार

सन 1940 के आसपास की बात है कि महामना पण्डित मदनमोहन जी का भक्ति-विभोर हृदय उपेक्षित श्रीकृष्ण जन्मस्थान के खण्डहरों को देखकर द्रवित हो उठा। उन्होंने इसके पुनरूद्वार का संकल्प लिया। उसी समय सन 1943 के लगभग ही स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला मथुरा पधारे और श्रीकृष्ण जन्म स्थान की ऐतिहासिक वन्दनीय भूमि के दर्शनार्थ गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जो दृश्य देखा उससे उनका हृदय उत्यन्त दु:खित हुआ। महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय ने इधर श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला को श्रीकृष्ण-जन्मस्थान की दुर्दशा के सम्बन्ध में पत्र लिखा और उधर श्रीबिड़ला जी ने उनको अपने हृदय की व्यथा लिख भेजी। उसी के फलस्वरूप श्री कृष्ण जन्मस्थान के पुनरूद्वार के मनोरथ का उदय हुआ। इसके फलस्वरूप धर्मप्राण श्री जुगल किशोर जी बिड़ला ने ता07 फरवरी 1944 को कटरा केशव देव को राजा पटनीमल के तत्कालीन उत्तराधिकारियों से खदीद लिया, परन्तु मालवीय जी ने पुनरूद्धार की योजना बनाई थी वह उनके जीवनकाल में पूरी न हो सकी। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार श्री बिड़ला जी ने ता0 21 फरवरी 1951 को श्रीकृष्ण जन्मभूमि ट्रष्ट के नाम से एक ट्रष्ट स्थापित किया।

जन्मभूमि ट्रस्ट की स्थापना 1951 में हुई थी परन्तु उस समय मुसलमानों की ओर से 1945 में किया हुआ एक मुक़दमा इलाहाबाद हाईकोर्ट में निर्णयाधीन था इसलिए ट्रस्ट द्वारा जन्मस्थान पर कोई कार्य 7 जनवरी 1953 से पहले-जब मुक्दक़मा ख़ारिज हो गया-न किया जा सका। उपेक्षित अवस्था में पड़े रहने के कारण उसकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। कटरा के पूरब की ओर का भाग सन् 1885 के लगभग तोड़कर बृन्दावन रेलवे लाइन निकाली जा चुकी थी। बाक़ी तीन ओर के परकोटा की दीवारें और उससे लगी हुई कोठरियाँ जगह-जगह गिर गयी थीं और उनका मलबा सब ओर फैला पड़ा था। कृष्ण चबूतरा का खण्डहर भी विध्वंस किये हुए मन्दिर की महानता के द्योतक के रूप में खड़ा था। चबूतरा पूरब-पश्चिम लम्बाई में 170 फीट और उत्तर-दक्खिन चौड़ाई में 66 फीट है। इसके तीनों ओर 16-16 फीट चौड़ा पुश्ता था जिसे सिकन्दर लोदी से पहले कुर्सी की सीध में राजा वीरसिंह देव ने बढ़ाकर परिक्रमा पथ का काम देने के लिये बनवाया था। यह पुश्ता भी खण्डहर हो चुका था। इससे क़रीब दस फीट नीची गुप्त कालीन मन्दिर की कुर्सी है जिसके किनारों पर पानी से अंकित पत्थर लगे हुए हैं।

उत्तर की ओर एक बहुत बड़ा गढ्डा था जो पोखर के रूप में था। समस्त भूमि का दुरूपयोग होता था, मस्जिद के आस-पास घोसियों की बसावट थी जो कि आरम्भ से ही विरोध करते रहे हैं। अदालत दीवानी, फौजदारी, माल, कस्टोडियन व हाईकोर्ट सभी न्यायालयों में एवं नगरपालिका में उनके चलायें हुए मुकदमों में अपने सत्व एवं अधिकारों की पुष्टि व रक्षा के लिए बहुत कुछ व्यय व परिश्रम करना पड़ा। सभी मुकदमों के निर्णय जन्मभूमि-ट्रस्ट के पक्ष में हुए।

मथुरा के प्रसिद्ध वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा हवन-पूजन के पश्चात श्री स्वामी अखंडानन्द जी महाराज ने सर्वप्रथम श्रमदान का श्रीगणेश किया और भूमि की स्वच्छता का पुनीत कार्य आरम्भ हुआ। दो वर्ष तक नगर के कुछ स्थानीय युवकों ने अत्यन्त प्रेम और उत्साह से श्रमदान द्वारा उत्तर ओर के ऊँचे-ऊँचे टीलों को खोदकर बड़े गड्डे को भर दिया और बहुत सी भूमि समतल कर दी। कुछ विद्यालयों के छात्रो ने भी सहयोग दिया। इन्हीं दिनों उत्तर ओर की प्राचीर की टूटी हुई दीवार भी श्री डालमियाँ जी के दस हज़ार रुपये के सहयोग से बनवा दी गयी। भूमि के कुछ भाग के स्वच्छ और समतल हो जाने पर भगवान कृष्ण के दर्शन एवं पूजन-अर्चन के लिए एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण डालमिया-जैन ट्रस्ट के दान से सेठ श्रीरामकृष्ण जी डालमिया की स्वर्गीया पूज्या माताजी की पुण्यस्मृति में किया गया। मन्दिर में भगवान के बल-विग्रह की स्थापना, जिसको श्री जुगल किशोर बिड़ला जी ने भेंट किया था, आषाढ़ शुक्ला द्वितीय सम्वत् 2014 ता0 29 जून सन् 1957 को हुई, और इसका उद्-घाटन भाद्रपद कृष्ण 8 सम्वत् 2015 ता0 6 सितंबर सन् 1958 को 'कल्याण' (गीता प्रेस) के यशस्वी सम्पादक संतप्रवर श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार के कर-कमलों द्वारा हुआ। यह मन्दिर श्रीकेशव देव मन्दिर के नाम से प्रख्यात है।

श्रीकृष्ण-चबूतरे का जीर्णोद्धार

कटरा केशवदेव-स्थित श्रीकृष्ण-चबूतरा ही भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य प्राक्ट्य-स्थली कहा जाता है। मथुरा-म्यूजियम के क्यूरेटर डा॰ वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने अपने लेख में ऐतिहासिक तथ्य देकर इस अभिमत को सिद्ध किया है। इससे सिद्ध होता है कि मथुरा के राजा कंस के जिस कारागार में वसुदेव-देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ने जन्म-ग्रहण किया था, वह कारागार आज कटरा केशवदेव के नाम से ही विख्यात है और 'इस कटरा केशवदेव के मध्य में स्थित चबूतरे के स्थान पर ही कंस का वह बन्दीगृह था, जहाँ अपनी बहन देवकी और अपने बहनोई वसुदेव को कंस ने कैद कर रखा था।' श्रीमद्भागवत में इस स्थल पर श्रीकृष्ण-जन्म के समय का वर्णन इस प्रकार है-

पित्रो: सम्पश्यतो सद्यो बभूव प्राकृत: शिशु:॥
ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदित: सुतं समादाय स सूतकागृहात्।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्य जा या योगमायाजनि नन्द जायया॥
तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वा:स्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ।
द्वारस्तु सर्वा: पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलश्रृंखलै: ॥
ता: कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवे:
(10।3।46-49)

अर्थात् 'पिता-माता' के देखते-देखते उन्होंने तुरन्त एक साधारण शिशु का रूप धारण कर लिया। तब वासुदेव जी ने भगवान की प्रेरणा से अपने पुत्र को लेकर सूतिका-गृह से बाहर निकलने की इच्छा की। उसी समय नन्द-पत्नी यशोदा के गर्भ से उस योगमाया का जन्म हुआ, जो भगवान की शक्ति होने के कारण उनके समान ही जन्मरहित है। उसी योगमाया ने द्वारपाल और पुरवासियों की समस्त इन्द्रियवृत्तियों की चेतना हर ली। वे सबके सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृह के सभी दरवाजे बन्द थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहे की जंजीरें और तोले जड़े हुये थे। उनके बाहर जाना बहुत कठिन था; परन्तु वसुदेव जी भगवान श्रीकृष्ण को गोद में लेकर ज्यों-ही उनके निकट पहुँचे, त्यों-ही वे सभी दरवाजे आपसे-आप खुल गये। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है।

श्रीवज्रनाभ ने अपने प्रपितामह की इसी जन्मस्थली पर उनका प्रथम स्मृति-मन्दिर बनवाया था और इसी स्थल पर उसके पश्चात के मन्दिरों के गर्भ-गृह (जहाँ भगवान् का अर्चाविग्रह विराजमान किया जाता है, उसको 'गर्भ-गृह कहते हैं।) भी निर्मित होते रहे। पुरातन कला-कृतियों में मुख्य मन्दिर की पादपीठिका (प्लिंथ) अष्ठप्रहरी (अठपहलू) हुआ करती थी, जिसे ऊँची कुर्सी देकर बनाया जाता था। इसीलिये अनेक मन्दिरों के ध्वंसावशेष और निर्माण के कारण यह स्थान 'श्रीकृष्ण-चत्वर' (चबूतरा) नाम ले प्रख्यात हुआ। इस स्थान पर ही श्री ओरछा-नरेश द्वारा निर्मित मन्दिर का गर्भ-गृह रहा, जो औरंगज़ेब द्वारा ध्वस्त मन्दिर के मलवे में दब गया। उस मन्दिर के पूर्व दिशावाले विशाल जगमोहन (दर्शक-गृह) के स्थान पर तो औंरगजेब ने एक ईदगाह खड़ी कर दी और पश्चिम में गर्भ-गृह अर्थात् सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चबूतरा बचा रहा।

श्री केशवदेव जी का प्राचीन विग्रह ब्रज के अन्य विग्रहों की भाँति आज भी सुरक्षित और पूजित है। औंरगजेब के शासनकाल में मुसलमानी फौजें मन्दिरों को ध्वस्त करने के लिए जब कूँच किया करती थीं, तब गुप्त रूप से हिन्दुओं को यह सूचना मिल जाती थी कि मन्दिर तोड़ने के लिए सेना आ रही है। यह सूचना मिलते ही निष्ठावान भक्तजन मन्दिर-स्थित विग्रहों को हिन्दू राज्य एवं रजवाड़ो में ले जाते थे। इसी कारण श्री गोविन्ददेव जी का श्री विग्रह जयपुर में, श्री नाथ जी का श्री विग्रह नाथद्वारा (उदयपुर) में एवं री मदनमोहन जी का श्री विग्रह करौली में आज भी विराजमान है। श्रीकृष्ण-चबूतरे पर ओरछा नरेश वाले श्री विग्रह के सम्बन्ध में स्वर्गीय बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित 'ब्रजमण्डल-दर्शन' में उल्लेख है कि— 'जहाँगीर बादशाह के समय 1610 साल में ओरछा के राजा वीरसिंहदेव ने 33 लाख रुपया लगाकर आदिकेशव का मन्दिर बनवाया था, जो कि 1669 साल में औंरगजेब के द्वारा ध्वस्त होकर मसजिद के रूप में बन गया।'

जिस मन्दिर में आदिकेशव विराजमान हैं, वह मन्दिर 1850 ई॰ में ग्वालियर के कामदार के द्वारा निर्मित हुआ है। प्राचीन विग्रह अद्यापि राजधान ग्राम (ज़िला कानपुर में औरैया, इटावा से 17 मील) पर स्थित है। वहीं पास में 2 मील पर बुधौली ग्राम में श्री हरिदेव जी विराजते हैं। प्राचीन केशव-मन्दिर के स्थान को 'केशव कटरा' कहते हैं। ईदगाह के तीन ओर की विशाल दीवारें ध्वस्त मन्दिर के पाषाण-खण्डों से बनी हुई हैं, जो ध्वंस किये गये प्राचीन मन्दिर की विशालता का मूक संदेश दे रही हैं। उपेक्षित रहने के कारण तीन शताब्दियों से भी अधिक समय तक यह स्थान मिट्टी-मलवे के टीलों में दब गया। उसी मलवे के नीचे से, जहाँ भगवान् का अर्चा-विग्रह विराजमान किया जाता था, वह गर्भ-गृह प्राप्त हुआ। उत्तरोत्तर श्रीकृष्ण-चबूतरे का विकास होता चला आ रहा है। श्री केशवदेव-मन्दिर के उपरान्त श्रीकृष्ण-चबूतरे के जीर्णोद्धार का कार्य सुप्रसिद्ध इंडियन एक्सप्रैस समाचार-पत्र-समूह-संचालक श्री रामनाथ जी गोयनका के उदार दान से उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती मूँगीबाई गोयनका की स्मृति में संवत 2019 में किया गया। गर्भ-गृह की छत के ऊपर संगमरमर की एक छत्री और एक बरामदा बनवाया गया। गर्भ-गृह की छत के फर्श पर भी सम्पूर्ण संगमरमर जड़वाया गया। बड़े चमत्कार की बात है कि चबूतरे के ऊपर बरामदे की दीवार में लगी संगमरमर की शिलाओं पर श्रीकृष्ण की विभिन्न मुद्राओं में आकृतियाँ उभर आयी हैं, जिन्हें देखकर दर्शकगण विभोर हो जाते हैं। शरद पूर्णिमा की पूर्ण चन्द्र-निशा में इस चबूतरे का दूध-जैसा धवल-सौन्दर्य देखते ही बनता है।

प्राचीन गर्भ-ग्रह की प्राप्ति

जिस समय चबूतरे पर निर्मित बरामदे की नींव की खुदाई हो रही थी, उस समय श्रमिकों को हथौड़े से चोट मारने पर नीचे कुछ पोली जगह दिखाई दी। उसे जब तोड़ा गया तो सीढ़ियाँ और नीचे काफ़ी बड़ा कमरा-सा मिला, जो ओरछा-नरेश-निर्मित मन्दिर का गर्भ-गृह था। उसमें जिस स्थान पर मूर्ति विराजती थी, वह लाल पत्थर का सिंहासन ज्यों-का-त्यों मिला। उसे यथावत् रखा गया है तथा गर्भ-गृह की जर्जरित दीवारों की केवल मरम्मत कर दी गयी हैं। ऊपर चबूतरे पर से नीचे गर्भ-गृह में दर्शनार्थियों के आने के लिये सीढ़ियाँ बना दी गयी हैं। गर्भ-गृह के सिंहासन के ऊपर दर्शकों के लिये वसुदेव-देवकी सहित श्रीकृष्ण-जन्म की झाँकियाँ चित्रित की गयी हैं। नीचे लाल पत्थर के पुराने सिंहासन पर जहाँ पहले कोई प्रतिमा रही होगी, श्रीकृष्ण की एक प्रतिमा भक्तों ने विराजमान कर दी है। पूर्व की दीवार में एक दरवाजे का चिह्न था, जो ईदगाह के नीचे को जाता था। आगे काफ़ी अँधेरा था। उसके मुख को पत्थर से बन्द करवा दिया गया। कक्ष के फर्श पर भी पत्थर लगे हुए हैं। उत्तर की ओर सीढ़ियाँ हैं यह स्थान अति प्राचीन है। वेदी पर भक्तजन श्रद्धा पूर्वक माथा टेककर धन्य होते हैं। दक्षिण की ओर बाहर निकलने के लिये एक दरवाजा निकाल दिया गया।

चबूतरे के तीनों ओर जो पुश्ता के खंडहर थे, बड़ी कठिनाइयों से तोड़े गये। उनको तोड़कर नीचे की कुर्सी स्वच्छ बना दी गयी और उस पर माबरल चिप्स फर्श बना दिया गया है। इस कुर्सी से दो फीट निचाई पर ढालू और ऊँची-नीची दोनों ओर की जो भूमि थी, उसको समतल करके उसमें बाटिका लगा दी गयी। इस भूमि की खुदाइर में अनेक अवशेष निकले हैं, जो विध्वंस किये हुए मन्दिरों के हैं और पुरातत्त्व की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। इन सबको सुरक्षा की दृष्टि से मथुरा राजकीय संग्रहालय को दे दिया गया है।

भागवत-भवन

सन 1965 में शिलान्यास होने के उपरान्त-भवन की नींव की खुदाई का कार्य प्रारम्भ हो गया था। आरम्भ में वाराणसी के श्रीरामचरितमानस-मन्दिर के अनुसार भागवत-भवन-निर्माण की योजना भी 14-15 लाख रुपयों की थी, लेकिन बाद में पुराना मन्दिर जो आगरा से भी दिखलाई पड़ता था, उसकी ऊँचाई के अनुसार शिखर की ऊँचाई 250 फीट रखी गयी, जिसके लिए सब मिलकर 24-25 लाख रुपये के ख़र्च का अनुमान लगाया गया। अनेक कारणों से, जिनमें योजना की विशालता एवं बीच-बीच में आने वाली कठिनाइयाँ शामिल हैं, 1981 का वर्ष बीतते-बीतते श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर अकेले डालमिया-परिवार एवं उनसे सम्बन्धित ट्रस्टों, व्यापारिक संस्थानों तथा अन्याय प्रेमियों की सेवा राशि भागवत-भवन और जन्मस्थान के अन्य विकास-कार्यो पर सब मिलाकर एक करोड़ रुपयों से ऊपर पहुँच गयी। श्रीकृष्ण–जन्मस्थान के विकास के लिये उदारमना महानुभावों की एक हज़ार रुपये या इससे अधिक की सेवा-राशियों का विवरण भी भागवत-भवन के विवरण के अन्त में जन्मभूमि स्मारिका में दिया गया।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, इस भवन की नींव वाराणसी के रामचरितमानस-मन्दिर के अनुसार बन चुकी थी। जब नींव के ऊपर दीवारों का भूमि की सतह से 7-8 फीट ऊँचाई तक निर्माण हो गया, उस समय 250 फुट ऊँचाई तक शिखर ले जाने का निर्णय हुआ। ऊँचे शिखर के निर्णय के साथ भागवत-भवन की जो कुर्सी 7-8 फीट ऊँची रखनी थी, उसको 30-35 फीट ऊँचे ले जाने का निर्माण चलता रहा। उस समय किसी को भी यह खयाल नहीं आया कि इसके ऊपर बनने बाले 250 फुट ऊँचे शिखर का भार वहन करने योग्य नींव है या नहीं। लगभग 30 फीट की ऊँचाई तक निर्माण का कार्य पहुँचने पर विशाल दीवारों में जब कुछ दरारें पड़ने लगीं, उस समय निर्माणकर्त्ताओं को चिन्ता हुई। तब तक निर्माण-कार्य 36 फीट से भी ऊपर पहुँच चुका था। नीवं की इस कमचोरी ओर सबसे पहले सिविल इजीनियर ने ध्यान आकर्षित करवाया, जो चण्डीगढ़ में प्रैक्टिस करते थे तथा जिन्होंने कराँची एवं सवाई माधोपुर के डालमिया जी के सीमेंट कारख़ानों का निर्माण करवाया था। तत्पश्चात इस संदेह की पुष्टि उड़ीसा सीमेंट के श्री पी0सी0 चटर्जी ने भी की। उसके बाद रूड़की इंजीनियरिंग यूनिवर्सिटी के श्री शमशेरप्रकाश एवं श्री गोपालरंजन द्वारा इसकी जाँच करवायी गयी, जिसकी रिपोर्ट उन्होंने फरवरी, 1974 में दी। इसकें बाद इस पर जून-जुलाई, सन 1974 में मद्रास के प्रसिद्ध श्री जी0एस0 रामस्वामी से जब सलाह ली गयी, तब यही निर्णय हुआ कि नींव के ऊपर वज़न घटाना चाहिये और उसके लिए शिखर को हल्का बनाया गया एवं ऊँचाई भी घटाकर लगभग 130 फीट कर दी गयी। तब से डिजाइनिंग का सारा काम श्री पी0सी0 चटर्जी को सौंपा गया, जिन्होंने बड़ी लगन के साथ काम किया और वे नक्शे इतने साफ और विवरण के साथ भेजते थे कि काम करने वाले को सरलता रहे। इस प्रकार के स्पष्ट नक्शे कोई भी आर्किटैक्ट अथवा सिविल इंजीनियर नहीं देते। आवश्यकतानुसार वे कई बार मथुरा आकर भी काम की प्रगति देखते रहे। जन्मस्थान की सेवा में उन्होंने मन्दिर निर्माण की एवं भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही इतना परिश्रम किया। इनकी धर्मपत्नी बहुत बीमार हो गयी, तब भी बिना विश्राम के ये काम करते रहे। निर्माण के समय आयी इन सब रूकावटों के कारण 2-3 वर्ष निर्माण स्थगित रहा। बीच-बीच में सीमेंट के अभाव से भी काम रूकता रहा। इस प्रकार भागवत-भवन के निर्माण में शिलान्यास से लेकर मूर्ति-प्रतिष्ठा तक लगभग 17 वर्ष लग गये।

श्रीमद्‌भागवत का ताम्रपत्नीकरण

पूर्व योजना थी कि भागवत-भवन की दीवारों पर श्रीमद्‌भागवत के सम्पूर्ण श्लोको को संगमरमर की शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाकर जड़वाया जाय। इसके लिए मन्दिर के सामने के जगमोहन को पर्याप्त बड़ा बनवाया गया, परन्तु प्रकाश के लिए खिड़कियाँ आदि छोड़ने के कारण जगह कम पड़ने लगी अत: यह निर्णय हुआ कि श्रीमद्‌भागवत के सम्पूर्ण श्लोकों को ताम्र-पत्रों पर उत्कीर्ण करवाकर लगवाया जाय, जिससे कि उनकी आयु अधिक रहे। कदाचित किसी भी कारण से विध्वस हो तो मकराने के पत्थर के लेखों से ताम्र पत्र के लेख कहीं अधिक टिकाऊ होगें और कागजों के ग्रन्थ भी नष्ट हो जायें तो भी ताम्र पत्र पर लिखे ग्रन्थ से श्रीमद्‌भागवत ग्रन्थ का पुनरूद्धार सरलता से हो सकता है। ताजमहल के संगमरमर में भी दाने (ग्रेंस) उभरने लगे हैं-ऐसा विशेषज्ञों का मत है मथुरा में बनी रिफाइनरी की गैस से ताजमहल की कलाकृति के नष्ट होने की सम्भावना पर भी समाचार-पत्रों में अनेक लोगों ने सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। ताम्रपत्र पर मौसम का केवल इतना ही प्रभाव पड़ता है कि ऊपर परत मैली हो जाती है, जो समय-समय पर चमकायी जा सकती है। अतएव ताम्रपत्रों पर श्रीमद्‌भागवत का मूल-पाठ अधिक काल तक सुरक्षित रह पाने के कारण श्रीमद्‌भागवत को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाकर भागवत भवन में लगवाया गया। कालान्तर में भूकम्प इत्यादि अथवा जीर्ण-शीर्णता की अवस्था में इमारत के ढह जाने से मलबे में दबे रहने पर भी इन ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण श्रीमद्‌भागवत का मूल-पाठ हज़ारों वर्षों तक सुरक्षित रह पायेगा, जबकि मकराने के संगमरमर पर श्रीमद्‌भागवत को खुदवाने से ऐसा सम्भव नहीं था। श्रीमद्‌भागवत का ताम्रपत्रों पर उत्खनन कार्य श्री व्यास नन्दन शर्मा की देखरेख में गांधीनगर, दिल्ली स्थिति राधा प्रेस में हुआ। श्रीमद्‌भागवत के कुल छ:सौ पैतीस ताम्रपत्र बने हैं, जो भागवत भवन के मुख्य मन्दिर का परिक्रमा की दीवारों पर लगवाये गये हैं।

भागवत-भवन एवं उनके मुख्य मंदिर

भागवत-भवन की कुर्सी को ऊँचा रखने के कारण नीचे के स्थान में विशाल कक्ष (हाल) निकाल दिये गये हैं। इस ऊँचाई को दो मजिलों में बाँट दिया गया है। जिनमें से पश्चिम के नीचे के तल्ले का उपयोग बालगोपाल शिक्षा-सदन नामक एक शिशु-विद्यालय के संचालनार्थ किया जा रहा है। ऊपर की मंजिल में पश्चिम की ओर श्रीकृष्ण-शोधपीठ-पुस्तकालय स्थापित किया गया हैं, दक्षिण की ओर दर्शकों के लिए श्रीकृष्ण की एवं श्रीराम की लीलाओं से सम्बन्धित यन्त्र-चालित झाकियाँ स्थापित की गयी है। मुख्य भागवत भवन तक पहुँचने के लिये पश्चिमी दिशा में 100 फीट लम्बी विशाल सीढ़ियाँ बनवायी गयी हैं, जससे भीड़ के समय यात्रियों के चढ़ने एवं उतरने के लिए असुविधा न हो। अशक्त, अतिवृद्ध एवं

विशिष्अ दर्शक गणों को मुख्य मन्दिर के धरातल तक ले जाने के लिये भागवत-भवन के पीछे की ओर उत्तर दिशा में ए लिफ्ट लग चुकी है, जो यात्रियों को परिक्रमा की छत तक ले जायेगी। वहाँ से लगभग 10 फीट ऊँचाई तक सीढ़ी से चढ़कर जाने पर सभा-मण्डप की छत पर पहुँचा जा सकता है। शिखर में ऊपर जाने को सीढ़ियाँ बनी हैं। शिखर के मध्य में बाहर चारों ओर चार छज्जे हैं। सबसे ऊपर की ऊँचाई पर उत्तर तरफ छज्जा है। इन छज्जों से समस्त मथुरा नगरी एंव सुदूर गोकुल, वृन्दावन आदि ब्रजस्थ तीर्थो का मनोरम प्राकृतिक दृश्य दिखायी पड़ता है। भागवत-भवन के मुख्य सभा-मण्डप के छत की ऊंचाई लगभग 60 फीट है। सभा-मण्डप के उत्तर की ओर मध्य में मुख्य मन्दिर हैं, जिसमें श्रीराधा-कृष्ण के 6 फीट संगमरमर के विशाल विग्रह स्थापित किये गये हैं और उस मन्दिर के द्वार के ठीक सामने वाली दीवार पर एक निर्दिष्ट स्थान पर हाथ जोड़ी मुद्रा में पवनपुत्र श्री हनुमान जी का श्रीविग्रह स्थापित किया गया है। मुख्य मन्दिर के पश्चिम की ओर स्थित छाटे मन्दिर में श्री जगन्नाथपुरी से लाये गये श्रीजगन्नाथ जी, श्रीबलभद्र जी एवं श्रीसुभद्राजी के विग्रह स्थापित हैं। सभामण्डप के मध्य भाग में दो छोटे मन्दिर पूर्वी और दिशा की ओर वाले मन्दिर में शिव-परिवार की मूर्तियाँ एवं पारदलिंग विराजमान किये गये हैं। श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर के सामने दक्षिण सिरे के पास श्री मालवीय जी महाराज की उनके दाहिनी ओर श्रीजुगलकिशोर जी विरला की एवं बाँयी ओर श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार की हाथ जोड़े मूर्तियाँ हैं, जिनको भगवान श्री राधा-कृष्ण-विग्रह के दर्शन बिना बाधा के होते रहेंगे। सभा-मण्डप के पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में तीन विशाल द्वार है। इन द्वारों के ऊपर की सजावट भारतीय शिल्प-शैली के आधार पर की गयी है। सभा-मण्डप के स्तम्भों के चारों ओर श्रीराधाकृष्ण के सखाओं, सखियों एवं संत-महात्माओं के चित्र संगमरमर पर उत्कीर्ण किये जा रहे हैं। सभा मण्डप के बाहर की छत पर से भी मथुरा-नगरी की विहंगम दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। सभा-मण्डप की दीवारों पर खिड़कियों के बीच की जगह में भी चित्रकारी होती। सभा मण्डप की छत पर वृन्दावन के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री दम्पत्ति किशोर जी गोस्वामी से सुन्दर चित्रकारी करवायी गयी है।

भागवत-भवन के अत्तुग्डं शिखर वैसे तो यात्री को दूर से ही आकर्षित करते हैं, परन्तु वे जैसे ही सीढ़ियों से चढ़कर मुख्य सभा मण्डप के नीचे वाले प्लेटफार्म पर पहुँचते हैं तो वहाँ से भागवत भवन का बाहरी दृश्य उन्हें और भी आकर्षित करने लगता है। सभी द्वारों, गवाक्षों, छज्जों, द्वार शाखाओं एव शिखरस्थ सजावट का भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन सांस्कृतिक शिल्प-शैली से शिल्पकारों ने ऐसा सजाया हे कि वे अति मनोरम लगती है। मुख्य मन्दिर का शिखर जन्मभूमि की सतह से लगभग 130 फीट ऊँचा है और छोटे मन्दिरों का शिखर लगभग 84 फीट ऊँचे जन्मभूमि की सतह सड़क से लगभग 20 फीट ऊँची है। अत: इन सबकी ऊँचाई से सड़क की सतह गिनी जाय तो लगभग 20 फीट और बढ़ जाती है। मुख्य मन्दिर के शिखर पर चक्र सहित छह फीट ऊँचे और मन्दिरों पर लगभग ढाई फीट ऊँचे स्वर्ण मण्डित कलश है। विग्रह-प्रतिष्ठा जिस भागवत-भवन को आधार-शिला नित्यलीला लीन भाई जी श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार के कर कमलों द्वारा हुई थी, उसका विग्रह-प्रतिष्ठा-महोत्सव फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, वि0स0 2038 शुक्रवार, दिनांक 12 फरवरी, 1982 को सम्पन्न हुआ। प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव में आचार्य थे वाराणसी के पण्डित श्री रामजीलाल जी शास्त्री एवं उनके अन्य सहयोगीगण। पण्डित श्रीरामजीलाल शास्त्री के आचार्यतत्व में ही इस भागवत-भवन का शिलान्यास नित्यलीला जीन पूज्य भाई जो श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार द्वारा सम्पन्न किया गया था।

पाँचों मन्दिरों के जो विग्रह हैं, उनमें से मुख्य मन्दिर के श्रीराधा-कृष्णजी के विग्रह श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान जी श्रीविग्रह एवं श्रीदुर्गाजी का श्रीविग्रह जयपुर में पाण्डेय मूर्ति म्यूजियम से मालिक श्री जगदीशनारायण जी पाण्डेय के द्वारा निर्मित हुए श्री जगन्नाथजी के श्रीविग्रह री जगन्नाथपुरी से वहाँ के पण्डित प्रवर श्री सदाशिवरथ शर्मा ने शास्त्रीय विधि से निर्मित करवाकर भेजे। पारद के शंकर श्री पारदेश्वरजी के लिंग का निर्माण बम्बई के श्री भाऊ साहेब कुलकर्णी से करवाया गया। वे वर्तमान में भारत के एकमात्र पारद-लिंग-निर्माता बतलाये जाते हैं। श्री मालवीयजी, श्री बिरलाजी एवं पोद्दारजी की मूर्तियों का निर्माण राजस्थान मूर्तकिला के श्रीरामेश्वरलालजी पाण्डेय द्वारा हुआ है।

प्रतिष्ठा-महोत्सव बुधवार, 3 फरवरी 1982 को गणेश-पूजन और नान्दीमुख-श्राद्ध द्वारा हुआ। माघ शूक्ल 13 शनिवार, 6 फरवरी 82 से लेकर माघ कृष्ण तृतीय बृहस्पतिवार 11 फरवरी 1982 तक पण्डित श्री रामजीलालजी शास्त्री के आचार्यत्व में प्रतिष्ठित किये जाने वाले सभी विग्रहों का अधिवास कार्य हुआ फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, शुक्रवार, 12 फरवरी 1982 को प्रात: 1030 बजे के उपरान्त विग्रहों की प्राण-प्रतिष्ठा हुई।

द्वारिकाधीश मन्दिर

मथुरा नगर के राजाधिराज बाज़ार में स्थित यह मन्दिर अपने सांस्कृतिक वैभव कला एवं सौन्दर्य के लिए अनुपम है । ग्वालियर राज के कोषाध्यक्ष सेठ गोकुल दास पारीख ने इसका निर्माण 1814–15 में प्रारम्भ कराया, जिनकी मृत्यु पश्चात इनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी सेठ लक्ष्मीचन्द्र ने मन्दिर का निर्माण कार्य पूर्ण कराया । वर्ष 1930 में सेवा पूजन के लिए यह मन्दिर पुष्टिमार्ग के आचार्य गिरधरलाल जी कांकरौली वालों को भेंट किया गया । तब से यहाँ पुष्टिमार्गीय प्रणालिका के अनुसार सेवा पूजा होती है । श्रावण के महीने में प्रति वर्ष यहाँ लाखों श्रृद्धालु सोने–चाँदी के हिंडोले देखने आते हैं। मथुरा के विश्राम घाट के निकट ही असकुंडा घाट के निकट यह मंदिर विराजमान है।

द्वारिकाधीश मन्दिर

इतिहास

यह मथुरा का सबसे विस्तृत पुष्टिमार्ग मंदिर है । भगवान कृष्ण को ही द्वारिकाधीश (द्वारिका का राजा) कहते हैं । यह उपाधि पुष्टीमार्ग के तीसरी गद्दी के मूल देवता से मिली है

वास्तु

यह समतल छत वाला दोमंज़िला मन्दिर है जिसका आधार आयताकार (118’ X 76’) है । पूर्वमुखी द्वार के खुलने पर खुला हुआ आंगन चारों ओर से कमरों से घिरा हुआ दिखता है । यह मंदिर छोटे-छोटे शानदार उत्कीर्णित दरवाजों से घिरा हुआ है । मुख्य द्वार से जाती सीढ़ियां चौकोर वर्गाकार के प्रांगण में पहुँचती हैं । इसका गोलाकार मठ इसकी शोभा बढ़ाता है । इसके बीच में चौकोर इमारत है जिसके सहारे स्वर्ण परत चढ़े त्रिगुण पंक्ति में खम्बे हैं जिन्हें छत-पंखों व उत्कीर्णित चित्रांकनों से सुसज्जित किया गया है । इसे बनाने में लखोरी ईंट व चूने, लाल एवं बलुआ पत्थर का इस्तेमाल किया गया है । मन्दिर के बाहरी स्वरूप को बंगलाधार मेहराब दरवाजों, पत्थर की जालियों, छज्जों व जलरंगों से बने चित्रों से सजाया है । यह चौकोर सिंहासन के समान ऊँचे भूखण्ड पर बना है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई 180 फीट और 120 फीट है। इसका मुख्य दरवाज़ा पूर्वाभिमुख बना है। द्वार से मदिर के आंगन तक जाने के लिए बहुत चौड़ी 16 सीढ़ियाँ हैं। दरवाज़े पर द्वारपालों के बैठने के लिए दोनों ओर दो गौखें हैं जो चार सीढ़ियों पर बने हैं। दूसरा द्वार 15 सीढ़ियों के बाद है। यहाँ पर भी द्वारपालों के बैठने के लिए दोनों ओर स्थान बने हैं। मंदिर के दोनों दरवाज़ों पर विशाल फाटक लगे हैं। मंदिर के आंगन में पहुँचने पर 6 सीढ़ियाँ हैं जो मंदिर के तीनों तरफ बनीं हैं। इन पर चढ़कर ही मंदिर और विशाल मंडप में पहुँचा जा सकता है।

मंडप या जगमोहन छ्त्र

मंडप या जगमोहन छ्त्र के आकार का है। यह मंडप बहुत ही भव्य है और वास्तुशिल्प का अनोखा उदारहण है। यह मंडप खम्बों पर टिका हुआ है। इसके पश्चिम की ओर तीन शिखर बने हैं जिनके नीचे राजाधिराज द्वारिकाधीश महाराज का आकर्षक विग्रह विराजित है। मंदिर में नाथद्वारा की कूँची से अनेक रंगीन चित्र बनाये गये हैं। खम्बों पर 6फीट पर से यह चित्र बने हैं। लाल, पीले, हरे रंगों से बने यह चित्र भागवत पुराण और दूसरे भक्ति ग्रन्थों में वर्णित भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण किया गया है। वसुदेव का यशोदा के पास जाना, योगमाया का दर्शन, शकटासुर वध, यमलार्जुन मोक्ष, पूतना वध, तृणावर्त वध, वत्सासुर वध, बकासुर, अघासुर, व्योमासुर, प्रलंबासुर आदि का वर्णन, गोवर्धन धारण, रासलीला, होली उत्सव, अक्रूर गमन, मथुरा आगमन, मानलीला, दानलीला आदि लगभग सभी झाँकियाँ उकेरी गयीं हैं। द्वारिकाधीश के विग्रह के पास ही उन सभी देव गणों के दर्शन हैं, जो ब्रह्मा के नायकत्व में भगवान श्रीकृष्ण के जन्म के समय उपस्थित थे और उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति की थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी द्वारा बताये गये सात स्वरूपों का विग्रह यहाँ दर्शनीय है। गोवर्धननाथ जी का विशाल चित्र है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पिता वल्लभाचार्य जी और उनके साथ पुत्रों के भी दर्शन हैं।

- मंदिर के दक्षिण में परिक्रमा मार्ग पर शालिग्राम जी का छोटा मंदिर है। इसमें गोकुलदास पारीख का भी एक चित्र है।

उत्सव

- अन्नकूट कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को गोवर्धन पूजा का मनोरथ सम्पन्न होता है।
- सावन के झूला और घटाएं इस मंदिर की विशेषता है।
- जन्माष्टमी, दीपावली और वसन्तोत्सव विशेष रूप से धूमधाम से मनाये जाते हैं।

विश्राम घाट

यमुना के तट पर विश्राम तीर्थ स्थित है। यह मथुरा का सर्वप्रधान एवं प्रसिद्ध घाट हैं। इस स्थान का वर्तमान नाम विश्राम घाट है। भगवान श्री कृष्ण ने कंस का वध कर इस स्थान पर विश्राम किया था इसलिये यहाँ की महिमा अपरम्पार है। कहा जाता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने महाबलशाली कंस को मारकर ध्रुव घाट पर उसकी अन्त्येष्टि संस्कार करवाकर बन्धु–बान्धवों के साथ यमुना के इस पवित्र घाट पर स्नान कर विश्राम किया था । श्रीकृष्ण की नरलीला में ऐसा सम्भव है; परन्तु सर्वशक्तियों से सम्पन्न सच्चिदानन्द स्वयं–भगवान श्रीकृष्णको विश्राम की आवश्यकता नहीं होती है । किन्तु भगवान से भूले– भटके जन्म मृत्यु के अनन्त, अथाह सागर में डूबते–उबरते हुए क्लान्त जीवों के लिए यह अवश्यक ही विश्राम का स्थान है।

सौर पुराण के अनुसार विश्रान्ति तीर्थ नामकरण का कारण बतलाया गया है–
ततो विश्रान्ति तीर्थाख्यं तीर्थमहो विनाशनम्।
संसारमरू संचार क्लेश विश्रान्तिदं नृणाम।।

संसार रूपी मरूभूमि में भटकते हुए, त्रितापों से प्रपीड़ित, सब प्रकार से निराश्रित, नाना प्रकार के क्लेशों से क्लान्त होकर जीव श्रीकृष्ण के पादपद्म धौत इस महातीर्थ में स्नान कर विश्राम अनुभव करते हैं। इसलिए इस महातीर्थ नाम विश्रान्ति या विश्राम घाट है। इस महातीर्थ में स्नान एवं आचमन के पश्चात प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु लोग ब्रजमण्डल की परिक्रमा का संकल्प लेते है । और पुन: यहीं पर परिक्रमा का समापन करते हैं।
कार्तिक माह की यमद्वितीया के दिन बहुत दूर–दूर प्रदेशों के श्रद्धालुजन यहाँ स्नान करते हैं । पुराणों के अनुसार यम (धर्मराज) एवं यमुना (यमी) ये दोनों जुड़वा भाई–बहन हैं । यमुना जी का हृदय बड़ा कोमल है । जीवों के नाना प्रकार के कष्टों को वे सह न सकीं । उन्होंने अपने जन्म दिन पर भैया यम को निमन्त्रण दिया । उन्हें तरह–तरह के सुस्वादु व्यजंन और मिठाईयाँ खिलाकर सन्तुष्ट किया । भैया यम ने प्रसन्न होकर कुछ माँगने के लिए कहा । यमुना जी ने कहा– भैया ! जो लोग श्रद्धापूर्वक आज के दिन इस स्थान पर मुझमें, स्नान करेंगे, आप उन्हें जन्म–मृत्यु एवं नाना प्रकार के त्रितापों से मुक्त कर दें। ऐसा सुनकर यम महाराज ने कहा– 'ऐसा ही हो । यूँ तो कहीं भी श्रीयमुना में स्नान करने का प्रचुर माहात्म्य है, फिर भी ब्रज में और विशेषकर विश्राम घाट पर भैयादूज के दिन स्नान करने का विशेष महत्व है । विशेषकर लाखों भाई–बहन उस दिन यमुना में इस स्थल पर स्नान करते हैं।

वास्तु

यह दोमंजिली संरचना है । इसे बनाने में लखोरी ईंट व चूने, लाल एवं बलुआ पत्थर का इस्तेमाल किया गया है । इसे बुर्ज व खम्बों पर बने अर्ध-गोलाकार, काँटेदार मेहराबों से सुसज्जित किया है । घाट का मध्य क्षेत्र खिले हुए आकर्षक रंगों से स्जा हुआ है । यह तीन तरफ से मठों से घिरा हुआ है व चौथी तरफ सीढ़ियाँ नदी में उतर रही हैं । मध्य क्षेत्र में संगमरमर से निर्मित श्री कृष्ण व बलराम की मूर्तियाँ नदी की ओर मुख करे स्थापित हैं । मूर्तियों के सामने पाँच विभिन्न आकार के मेहराब हैं । बीच का मेहराब पत्थर के कुरसी आधार व पत्थर के छोटे स्तंभ से निर्मित आयताकार आकार का है जबकि नदी की तरफ वाले मेहराब ऊपरी मंज़िल का सहारा लेकर छतरी की आकृति बनाते हैं । यहाँ अनेक सन्तों ने तपस्या की एवं अपना विश्राम स्थल बनाया । विश्राम घाट के उत्तर में 12 और दक्षिण में 12 घाट है।

रंगेश्वर महादेव

रंगभूमि एवं श्री रंगेश्वर महादेव

मथुरा के दक्षिण में श्री रंगेश्वर महादेव जी क्षेत्रपाल के रूप में अवस्थित हैं। भेज–कुलांगार महाराज कंस ने श्री कृष्ण और बलदेव को मारने का षड़यन्त्र कर इस तीर्थ स्थान पर एक रंगशाला का निर्माण करवाया। अक्रूर के द्वारा छलकर श्री नन्द गोकुल से श्री कृष्ण–बलदेव को लाया गया। श्रीकृष्ण और बलदेव नगर भ्रमण के बहाने ग्वालबालों के साथ लोगों से पूछते–पूछते इस रंगशाला में प्रविष्ट हुये। रंगशाला बहुत ही सुन्दर सजायी गई थी। सुन्दर-सुन्दर तोरण-द्वार पुष्पों से सुसज्जित थे। सामने शंकर का विशाल धनुष रखा गया था। मुख्य प्रवेश द्वार पर मतवाला कुबलयापीड़ हाथी झूमते हुए, बस इंगित पाने की प्रतीक्षा कर रहा था, जो दोनों भाईयों को मारने के लिए भली भाँति सिखाया गया था ।

धनुर्याग

रंगेश्वर महादेव की छटा भी निराली थी। उन्हें विभिन्न प्रकार से सुसज्जित किया गया था। रंगशाला के अखाड़े में चाणूर, मुष्टिक, शल, तोषल आदि बड़े-बड़े भयंकर पहलवान दंगल के लिए प्रस्तुत थे। महाराज कंस अपने बडे-बड़े नागरिकों तथा मित्रों के साथ उच्च मंच पर विराजमान था।

रंगशाला में प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण ने अनायास ही धनुष को अपने बायें हाथ से उठा लिया। पलक झपकते ही सबके सामने उसकी डोरी चढ़ा दी तथा डोरी को ऐसे खींचा कि वह धनुष भयंकर शब्द करते हुए टूट गया। धनुष की रक्षा करने वाले सारे सैनिकों को दोनों भाईयों ने ही मार गिराया। कुवलयापीड़ का वध कर श्रीकृष्ण ने उसके दोनों दाँतों को उखाड़ लिया और उससे महावत एवं अनेक दुष्टों का संहार किया। कुछ सैनिक भाग खड़े हुए और महाराज कंस को सारी सूचनाएँ दीं, तो कंस ने क्रोध से दाँत पीसते हुए चाणूर मुष्टिक को शीघ्र ही दोनों बालकों का वध करने के लिए इंगित किया। इतने में श्रीकृष्ण एवं बलदेव अपने अंगों पर ख़ून के कुछ छींटे धारण किये हुए हाथी के विशाल दातों को अपने कंधे पर धारण कर सिंहशावक की भाँति मुसकुराते हुए अखाड़े के समीप पहुँचे। चाणूर और मुष्टिक ने उन दोनों भाईयों को मल्लयुद्ध के लिए ललकारा। नीति विचारक श्रीकृष्ण ने अपने समान आयु वाले मल्लों से लड़ने की बात कही। किन्तु चाणूर ने श्रीकृष्ण को और मुष्टिक ने बलराम जी को बड़े दर्प से, महाराज कंस का मनोरंजन करने के लिए ललकारा। श्रीकृष्ण–बलराम तो ऐसा चाहते ही थे। इस प्रकार मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया।

वहाँ पर बैठी हुई पुर–स्त्रियाँ उस अनीतिपूर्ण मल्ल्युद्ध को देखकर वहाँ से उठकर चलने को उद्यत हो गई। श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का दर्शनकर कहने लगीं– अहो! सच पूछो तो ब्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है। वहाँ परम पुरुषोत्तम मनुष्य के वेश में छिपकर रहते हैं। देवादिदेव महादेव शंकर और लक्ष्मी जी जिनके चरणकमलों की पूजा करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रंग–बिरंगे पूष्पों की माला धारणकर गऊओं के पीछे–पीछे सखाओं और बलरामजी के साथ बाँसुरी–बजाते और नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए आनन्द से विचरण करते हैं। श्रीकृष्ण की इस रूपमधुरिमा का आस्वादन केवल ब्रजवासियों एवं विशेषकर गोपियों के लिए ही सुलभ है। वहाँ के मयूर, शुक, सारी, गौएँ, बछड़े तथा नदियाँ सभी धन्य हैं। वे स्वच्छन्द रूप से श्रीकृष्ण की विविध प्रकार की माधुरियों का पान करके निहाल हो जाते हैं। अभी वे ऐसी चर्चा कर ही रही थीं कि श्रीकृष्ण ने चाणूर और बलरामजी ने मुष्टिक को पछाड़कर उनका वध कर दिया। तदनन्तर कूट, शल, तोषल आदि भी मारे गये। इतने में कंस ने क्रोधित होकर श्रीकृष्ण–बलदेव और नन्द–वसुदेव सबको बंदी बनाने के लिए आदेश दिया। किन्तु, सबके देखते ही देखते बड़े वेग से उछलकर श्रीकृष्ण उसके मञ्च पर पहुँच गये और उसकी चोटी पकड़कर नीचे गिरा दिया तथा उसकी छाती के ऊपर कूद गये, जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस प्रकार सहज ही कंस मारा गया। श्रीकृष्ण ने रंगशाला में अनुचरों के साथ कंस का उद्धार किया। कंस के पूजित शंकर जी इस रंग को देखकर कृत-कृत्य हो गये। इसलिए उनका नाम श्रीरंगेश्वर हुआ। यह स्थान आज भी कृष्ण की इस रंगमयी लीला की पताका फहरा रहा है। श्रीमद्भागवत के अनुसार तथा श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद के विचार से कंस का वध शिवरात्रि के दिन हुआ था। क्योंकि कंस ने अक्रूर को एकादशी की रात अपने घर बुलाया तथा उससे मन्त्रणा की थी।

द्वादशी को अक्रूर का नन्द भवन में पहुँचना हुआ, त्रयोदशी को नन्दगाँव से अक्रूर के रथ में श्रीकृष्ण बलराम मथुरा में आये, शाम को मथुरा नगर भ्रमण तथा धनुष यज्ञ हुआ था। दूसरे दिन अर्थात शिव चतुर्दशी के दिन कुवलयापीड़, चाणुरमुष्टिक एवं कंस का वध हुआ था।

प्रतिवर्ष यहाँ कार्तिक माह में देवोत्थान एकादशी से एक दिन पूर्व शुक्ला दशमी के दिन चौबे समाज की ओर से कंस-वध मेले का आयोजन किया जाता है। उस दिन कंस की 25–30 फुट ऊँची मूर्ति का श्रीकृष्ण के द्वारा वध प्रदर्शित होता है।

वृन्दावन

वृन्दावन मथुरा से 12 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर-पश्चिम में यमुना तट पर स्थित है । यह कृष्ण की लीलास्थली है । हरिवंश पुराण, श्रीमद्भागवत, विष्णु पुराण आदि में वृन्दावन की महिमा का वर्णन किया गया है ।

- कालिदास ने इसका उल्लेख रघुवंश में इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में शूरसेनाधिपति सुषेण का परिचय देते हुए किया है* इससे कालिदास के समय में वृन्दावन के मनोहारी उद्यानों की स्थिति का ज्ञान होता है ।
- श्रीमद्भागवत के अनुसार गोकुल से कंस के अत्याचार से बचने के लिए नंदजी कुटुंबियों और सजातीयों के साथ वृन्दावन निवास के लिए आये थे
- विष्णु पुराण में इसी प्रसंग का उल्लेख है
- विष्णुपुराण में अन्यत्र वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी है* आदि ।

प्राचीन वृन्दावन

कहते है कि वर्तमान वृन्दावन असली या प्राचीन वृन्दावन नहीं है । श्रीमद्भागवत* के वर्णन तथा अन्य उल्लेखों से जान पड़ता है कि प्राचीन वृन्दावन गोवर्धन के निकट था । गोवर्धन-धारण की प्रसिद्ध कथा की स्थली वृन्दावन पारसौली (परम रासस्थली) के निकट था । अष्टछाप कवि महाकवि सूरदास इसी ग्राम में दीर्घकाल तक रहे थे । सूरदास जी ने **वृन्दावन** रज की महिमा के वशीभूत होकर गाया है-
हम ना भई वृन्दावन रेणु

ब्रज का हृदय

वृन्दावन का नाम आते ही मन पुलकित हो उठता है । योगेश्वर श्री कृष्ण की मनभावन मूर्ति आँखों के सामने आ जाती है । उनकी दिव्य आलौकिक लीलाओं की कल्पना से ही मन भक्ति और श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है । वृन्दावन को ब्रज का हृदय कहते है जहाँ श्री राधाकृष्ण ने अपनी दिव्य लीलाएँ की हैं । इस पावन भूमि को पृथ्वी का अति उत्तम तथा परम गुप्त भाग कहा गया है । पद्म पुराण में इसे भगवान का साक्षात शरीर, पूर्ण ब्रह्म से सम्पर्क का स्थान तथा सुख का आश्रय बताया गया है । इसी कारण से यह अनादि काल से भक्तों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है । चैतन्य महाप्रभु, स्वामी हरिदास, श्री हितहरिवंश, महाप्रभु वल्लभाचार्य आदि अनेक गोस्वामी भक्तों ने इसके वैभव को सजाने और संसार को अनश्वर सम्पति के रुप में प्रस्तुत करने में जीवन लगाया है । यहाँ आनन्दप्रद युगलकिशोर श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा की अद्भुत नित्य विहार लीला होती रहती है ।

नामकरण

- इस पावन स्थली का वृन्दावन नामकरण कैसे हुआ ? इस संबंध में अनेक मत हैं । 'वृन्दा' तुलसी को कहते हैं । यहाँ तुलसी के पौधे अधिक थे । इसलिए इसे वृन्दावन कहा गया ।
- वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी वृन्दा हैं । कहते हैं कि वृन्दा देवी का मन्दिर सेवाकुंज वाले स्थान पर था । यहाँ आज भी छोटे-छोटे सघन कुंज हैं । श्री वृन्दा देवी के द्वारा परिसेवित परम रमणीय विविध प्रकार के सेवाकुंजों और केलिकुंजों द्वारा परिव्याप्त इस रमणीय वन का नाम वृन्दावन है। यहाँ वृन्दा देवी का सदा-सर्वदा अधिष्ठान है। वृन्दा देवी श्रीवृन्दावन की रक्षयित्री, पालयित्री, वनदेवी हैं। वृन्दावन के वृक्ष, लता, पशु-पक्षी सभी इनके आदेशवर्ती और अधीन हैं। श्री वृन्दा देवी की अधीनता में अगणित गोपियाँ नित्य-निरन्तर कुंजसेवा में संलग्न रहती हैं। इसलिए ये ही कुंज सेवा की अधिष्ठात्री देवी हैं। पौर्णमासी योगमाया पराख्या महाशक्ति हैं। गोष्ठ और वन में लीला की सर्वांगिकता का सम्पादन करना योगमाया का कार्य है। योगमाया समाष्टिभूता स्वरूप शक्ति हैं। इन्हीं योगमाया की लीलावतार हैं- भगवती पौर्णमासीजी। दूसरी ओर राधाकृष्ण के निकुंज-विलास और रास-विलास आदि का सम्पादन कराने वाली वृन्दा देवी हैं। वृन्दा देवी के पिता का नाम चन्द्रभानु, माता का नाम फुल्लरा गोपी तथा पति का नाम महीपाल है। ये सदैव वृन्दावन में निवास करती हैं। ये वृन्दा, वृन्दारिका, मैना, मुरली आदि दूती सखियों में सर्वप्रधान हैं। ये ही वृन्दावन की वनदेवी तथा श्रीकृष्ण की लीलाख्या महाशक्ति की विशेष मूर्तिस्वरूपा हैं। इन्हीं वृन्दा ने अपने परिसेवित और परिपालित वृन्दावन के साम्राज्य को महाभाव स्वरूपा वृषभानु नन्दिनी राधिका के चरणकमलों में समर्पण कर रखा है। इसीलिए राधिका जी ही वृन्दावनेश्वरी हैं।
- ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार वृन्दा राजा केदार की पुत्री थी । उसने इस वनस्थली में घोर तप किया था । अत: इस वन का नाम वृन्दावन हुआ । कालान्तर में यह वन धीरे-धीरे बस्ती के रुप में विकसित होकर आबाद हुआ ।
- ब्रह्म वैवर्त पुराण में राजा कुशध्वज की पुत्री जिस तुलसी का शंखचूड़ से विवाह आदि का वर्णन है, तथा पृथ्वी लोक में हरिप्रिया वृन्दा या तुलसी जो वृक्ष रूप में देखी जाती हैं- ये सभी सर्वशक्तिमयी राधिका की कायव्यूहा स्वरूपा, सदा-सर्वदा वृन्दावन में निवास कर और सदैव वृन्दावन के निकुंजों में युगल की सेवा करने वाली वृन्दा देवी की अंश, प्रकाश या कला स्वरूपा हैं। इन्हीं वृन्दा देवी के नाम से यह वृन्दावन प्रसिद्ध है। इसी पुराण में कहा गया है कि श्रीराधा के सोलह नामों में से एक नाम वृन्दा भी है । वृन्दा अर्थात राधा अपने प्रिय श्रीकृष्ण से

मिलने की आकांक्षा लिए इस वन में निवास करती है और इस स्थान के कण-कण को पावन तथा रसमय करती हैं । वृन्दावन यानी भक्ति का वन अथवा तुलसी का वन।

- धार्मिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत महापुराण में वृन्दावन की महिमा अधिक है । यहाँ पर उस परब्रह्म परमात्मा ने मानव रुप अवतार धारण कर अनेक प्रकार की लीलायें की । यह वृन्दावन व्रज में आता हैं । व्रज-अर्थात- व से ब्रह्म और शेष रह गया रज यानि यहाँ ब्रह्म ही रज के रुप में व्याप्त हैं । इसीलिए इस भूमि को व्रज कहा जाता हैं । उसी व्रज में यह वृन्दावन भी आता हैं। विशेषकर यह वृन्दावन भगवान् श्रीकृष्ण की लीला क्षेत्र हैं । किसी संत ने कहा है कि - वृन्दावन सो वन नहीं , नन्दगांव सो गांव । बंशीवट सो बट नहीं, कृष्ण नाम सो नाम ।[3] इस वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण की चिन्मय रुप प्रेमरुपा राधा जी साक्षात विराजमान हैं । राधा साक्षत भक्ति रुपा है इस लिए इस वृन्दावन में वास करने तथा भजन कीर्तन एवं दान इत्यादि करने से सौ गुना फल प्राप्त होता है । शिरोमणि श्रीमद्भागवत में यत्र-तत्र सर्वत्र ही श्रीवृन्दावन की प्रचुर महिमा का वर्णन प्राप्त होता है।
- श्रीनन्दबाबा के एवं ज्येष्ठ भ्राता श्री उपानन्द जी कह रहे हैं-उपद्रवों से भरे हुए इस गोकुल महावन में न रहकर, तुरन्त सब प्रकार से सुरम्य, तृणोंसे आच्छादित, नाना प्रकार की वृक्ष-वल्लरियों तथा पवित्र पर्वत से सुशोभित, गो आदि पशुओं के लिए सब प्रकार से सुरक्षित इस परम रमणीय वृन्दावन में हम गोप, गोपियों के लिए निवास करना कर्तव्य है।*
- चतुर्मुख ब्रह्मा श्रीकृष्ण की अद्भुत लीला-माधुरी का दर्शन कर बड़े विस्मित हुए और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। ब्रह्माजी कह रहे हैं- 'अहो! आज तक भी श्रुतियाँ जिनके चरणकमलों की धूलि को अन्वेषण करके भी नहीं पा सकी हैं, वे भगवान मुकुन्द जिनके प्राण एवं जीवन सर्वस्व हैं, इस वृन्दावन में उन ब्रजवासियों में से किसी की चरणधूलि में अभिषिक्त होने योग्य तृण, गुल्म या किसी भी योनि में जन्म होना मेरे लिए महासौभाग्य की बात होगी। यदि इस वृन्दावन में किसी योनि में जन्म लेने की सम्भावना न हो, तो नन्द गोकुल के प्रान्त भाग में भी किसी शिला के रूप में जन्म ग्रहण करूँ, जिससे वहाँ की मैला साफ करने वाली जमादारनियाँ भी अपने पैरों को साफ करने के लिए उन पत्थरों पर पैर रगड़ें , जिससे उनकी चरणधूलि को स्पर्श करने का भी सौभाग्य प्राप्त हो।'[4]
- प्रेमातुरभक्त उद्धव जी तो यहाँ तक कहते हैं कि जिन्होंने दुस्त्यज्य पति-पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियों, आर्यधर्म और लोकलज्जा आदि सब कुछ का परित्याग कर श्रुतियों के अन्वेषणीय स्वयं-भगवान ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण को भी अपने प्रेम से वशीभूत कर रखा है- मैं उन गोप-गोपियों की चरण-गोपियों की चरण-धूलि से अभिषिक्त होने के लिए इस वृन्दावन में गुल्म, लता आदि किसी भी रूप में जन्म प्राप्त करने पर अपना अहोभाग्य समझूँगा। [5]
- रंगभूमि में उपस्थित माथुर रमणियाँ वृन्दावन की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हुई कह रही हैं-अहा ! इन तीनों लोको में श्रीवृन्दावन और वृन्दावन में रहने वाली गोप-रमणियाँ ही धन्य हैं, जहाँ परम पुराण पुरुष श्रीकृष्ण योगमाया के द्वारा निगूढ़ रूप में मनुष्योचित लीलाएँ कर रहे हैं। विचित्र वनमाला से विभूषित होकर बलदेव और सखाओं के साथ मधुर मुरली को बजाते हुए गोचारण करते हैं तथा विविध प्रकार के क्रीड़ा-विलास में मग्न रहते हैं। [6]
- कृष्ण प्रेम में उन्मत्त एक गोपी दूसरी गोपी को सम्बोधित करती हुई कह रही है- अरी सखि! यह वृन्दावन, वैकुण्ठ लोक से भी अधिक रूप में पृथ्वी की कीर्तिका विस्तार कर रहा है, क्योंकि यह यशोदानन्दन श्रीकृष्ण के चरणकमलों के चिह्नों को अपने अंक में धारण कर अत्यन्त सुशोभित हो रहा है। सखि! जब रसिकेन्द्र श्रीकृष्ण अपनी विश्व-मोहिनी मुरली की तान छेड़ देते हैं, उस समय वंशीध्वनिको मेघागर्जन समझकर मयूर अपने पंखों को फैलाकर उन्मत्त की भाँति नृत्य करने लगते हैं। इसे देखकर पर्वत के शिखरों पर विचरण करने वाले पशु-पक्षी सम्पूर्ण रूप से निस्तब्ध होकर अपने कानों से मुरली ध्वनि तथा नेत्रों से मयूरों के नृत्य का रसास्वादन करने लगते हैं। [7]
- स्वयं शुकदेव गोस्वामीजी परम पुलकित होकर वृन्दावन की पुन:पुन: प्रशंसा करते हैं-अपने सिर पर मयूर पिच्छ, कानों में पीले कनेर के सुगन्धित पुष्प, श्याम अंगों पर स्वर्णिम पीताम्बर, गले में पंचरंगी पुष्पों की चरणलम्बित वनमाला धारणकर अपनी अधर-सुधा के द्वारा वेणु को प्रपूरितकर उसके मधुर नाद से चर-अचर सबको मुग्ध कर रहे हैं तथा ग्वालबाल जिनकी कीर्ति का गान कर रहे हैं, ऐसे भुवनमोहन नटवर वेश धारणकर श्रीकृष्ण अपने श्रीचरण चिह्नों के द्वारा सुशोभित करते हुए परम रमणीय वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। [8]
- इसलिए अखिल चिदानन्द रसों से आप्लावित मधुर वृन्दावन को छोड़कर श्रीकृष्ण कदापि अन्यत्र गमन नहीं करते हैं।*
- एक रसिक और भक्त कवि ने वृन्दावन के सम्बन्ध में श्रुति पुराणों का सार गागर में सागर की भाँति संकलन कर ठीक ही कहा है- ब्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरन्द। ब्रज वनिता सब पुष्प हैं मधुकर गोकुलचन्द।

महाप्रभु चैतन्य का प्रवास

प्राचीन वृन्दावन मुसलमानों के शासन काल में उनके निरंतर आक्रमणों के कारण नष्ट हो गया था और कृष्णलीला की स्थली का कोई अभिज्ञान शेष नहीं रहा था । 15वीं शती में चैतन्य महाप्रभु ने अपनी ब्रजयात्रा के समय वृन्दावन तथा कृष्ण कथा से संबंधित अन्य स्थानों को अपने अंतर्ज्ञान द्वारा पहचाना था । रासस्थली, वंशीवट से युक्त वृन्दावन सघन वनों में लुप्त हो गया था। कुछ वर्षों के पश्चात शाण्डिल्य एवं भागुरी ऋषि आदि की सहायता से श्री वज्रनाभ महाराज ने कहीं श्रीमन्दिर, कहीं सरोवर, कहीं कुण्ड आदि की स्थापनाकर लीला-स्थलियों का प्रकाश किया। किन्तु लगभग साढ़े चार हज़ार वर्षों के बाद ये सारी लीला-स्थलियाँ पुन: लुप्त हो गईं, महाप्रभु चैतन्य ने तथा श्री रूप-सनातन आदि अपने परिकारों के द्वारा लुप्त श्रीवृन्दावन और ब्रजमंडल की लीला-स्थलियों को पुन: प्रकाशित किया। श्री चैतन्य महाप्रभु के पश्चात उन्हीं की विशेष आज्ञा से श्री लोकनाथ और श्री भूगर्भ गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्री रूप गोस्वामी, श्री गोपालभट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्री रघुनाथदास गोस्वामी, श्री जीव गोस्वामी आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्यों ने विभिन्न शास्त्रों की सहायता से, अपने अथक

परिश्रम द्वारा ब्रज की लीला-स्थलियों को प्रकाशित किया है। उनके इस महान कार्य के लिए सारा विश्व, विशेषत: वैष्णव जगत उनका चिरऋणी रहेगा।

वर्तमान वृन्दावन में प्राचीनतम मंदिर राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है। यह मुग़ल सम्राट अकबर के शासनकाल में बना था । मूलत: यह मंदिर सात मंजिलों का था । ऊपर के दो खंड औरंगज़ेब ने तुड़वा दिए थे । कहा जाता है कि इस मंदिर के सर्वोच्च शिखर पर जलने वाले दीप मथुरा से दिखाई पड़ते थे । यहाँ का विशालतम मंदिर रंगजी के नाम से प्रसिद्ध है । यह दाक्षिणत्य शैली में बना हुआ है । इसके गोपुर बड़े विशाल एवं भव्य हैं । यह मंदिर दक्षिण भारत के श्रीरंगम के मंदिर की अनुकृति जान पड़ता है । वृन्दावन के दर्शनीय स्थल हैं- निधिवन (हरिदास का निवास कुंज), कालियादह, सेवाकुंज आदि।

प्राकृतिक छटा

वृन्दावन की प्राकृतिक छटा देखने योग्य है । यमुना जी ने इसको तीन ओर से घेरे रखा है । यहाँ के सघन कुंजो में भाँति-भाँति के पुष्पों से शोभित लता तथा ऊँचे-ऊँचे घने वृक्ष मन में उल्लास भरते हैं । बसंत ॠतु के आगमन पर यहाँ की छटा और सावन-भादों की हरियाली आँखों को शीतलता प्रदान करती है, वह श्रीराधा-माधव के प्रतिबिम्बों के दर्शनों का ही प्रतिफल है ।

वृन्दावन का कण-कण रसमय है । यहाँ प्रेम-भक्ति का ही साम्राज्य है । इसे गोलोक धाम से अधिक बढ़कर माना गया है । यही कारण है कि हज़ारों धर्म-परायणजन यहाँ अपने-अपने कामों से अवकाश प्राप्त कर अपने शेष जीवन को बिताने के लिए यहाँ अपने निवास स्थान बनाकर रहते हैं । वे नित्य प्रति रासलीलाओं, साधु-संगतों, हरिनाम संकीर्तन, भागवत आदि ग्रन्थों के होने वाले पाठों में सम्मिलित होकर धर्म-लाभ प्राप्त करते हैं । वृन्दावन मथुरा भगवान कृष्ण की लीला से जुडा हुआ है । ब्रज के केन्द्र में स्थित वृन्दावन में सैंकड़ो मन्दिर है । जिनमें से अनेक ऐतिहासिक धरोहर भी है । यहाँ सैंकड़ों आश्रम और कई गौशालाऐं है । गौड़ीय वैष्णव, वैष्णव और हिन्दुओं के धार्मिक क्रिया-कलापों के लिए वृन्दावन विश्वभर में प्रसिद्ध है । देश से पर्यटक और तीर्थ यात्री यहाँ आते है । सूरदास, स्वामी हरिदास, चैतन्य महाप्रभु के नाम वृन्दावन से हमेशा के लिए जुड़े हुए है ।

वृन्दावन में यमुना के घाट

वृन्दावन में श्रीयमुना के तट पर अनेक घाट हैं। उनमें से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध घाटों का उल्लेख किया जा रहा है-

1. श्रीवराहघाट- वृन्दावन के दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्राचीन यमुनाजी के तट पर श्रीवराहघाट अवस्थित है। तट के ऊपर भी श्रीवराहदेव विराजमान हैं। पास ही श्रीगौतम मुनि का आश्रम है।
2. कालीयदमनघाट- इसका नामान्तर कालीयदह है। यह वराहघाट से लगभग आधे मील उत्तर में प्राचीन यमुना के तट पर अवस्थित है। यहाँ के प्रसंग के सम्बन्ध में पहले उल्लेख किया जा चुका है। कालीय को दमन कर तट भूमि में पहुँच ने पर श्रीकृष्ण को ब्रजराज नन्द और ब्रजेश्वरी श्री यशोदा ने अपने आसुँओं से तर-बतरकर दिया तथा उनके सारे अंगो में इस प्रकार देखने लगे कि 'मेरे लाला को कहीं कोई चोट तो नहीं पहुँची है।' महाराज नन्द ने कृष्ण की मंगल कामना से ब्राह्मणों को अनेकानेक गायों का यहीं पर दान किया था।
3. सूर्यघाट- इसका नामान्तर आदित्यघाट भी है। गोपालघाट के उत्तर में यह घाट अवस्थित है। घाट के ऊपर वाले टीले को आदित्य टीला कहते हैं। इसी टीले के ऊपर श्रीसनातन गोस्वामी के प्राणदेवता श्री मदन मोहन जी का मन्दिर है। उसके सम्बन्ध में हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। यहीं पर प्रस्कन्दन तीर्थ भी है।
4. युगलघाट- सूर्य घाट के उत्तर में युगलघाट अवस्थित है। इस घाट के ऊपर श्री युगलबिहारी का प्राचीन मन्दिर शिखरविहीन अवस्था में पड़ा हुआ है। केशी घाट के निकट एक और भी जुगल किशोर का मन्दिर है। वह भी इसी प्रकार शिखरविहीन अवस्था में पड़ा हुआ है।
5. श्रीबिहारघाट- युगलघाट के उत्तर में श्रीबिहारघाट अवस्थित है। इस घाट पर श्रीराधाकृष्ण युगल स्नान, जल विहार आदि क्रीड़ाएँ करते थे।
6. श्रीआंधेरघाट- युगलघाट के उत्तर में यह घाट अवस्थित हैं। इस घाट के उपवन में कृष्ण और गोपियाँ आँखमुदौवल की लीला करते थे। अर्थात् गोपियों के अपने करपल्लवों से अपने नेत्रों को ढक लेने पर श्रीकृष्ण आस-पास कहीं छिप जाते और गोपियाँ उन्हें ढूँढ़ती थीं। कभी श्रीकिशोरी जी इसी प्रकार छिप जातीं और सभी उनको ढूँढ़ते थे।
7. इमलीतला घाट- आंधेरघाट के उत्तर में इमलीघाट अवस्थित है। यहीं पर श्रीकृष्ण के समसामयिक इमली वृक्ष के नीचे महाप्रभु श्रीचैतन्य देव अपने वृन्दावन वास काल में प्रेमाविष्ट होकर हरिनाम करते थे। इसलिए इसको गौरांगघाट भी कहते हैं।
8. श्रृंगारघाट- इमलीतला घाट से कुछ पूर्व दिशा में यमुना तट पर श्रृंगारघाट अवस्थित है। यहीं बैठकर श्रीकृष्ण ने मानिनी श्रीराधिका का श्रृंगार किया था। वृन्दावन भ्रमण के समय श्रीनित्यानन्द प्रभुने इस घाट में स्नान किया था तथा कुछ दिनों तक इसी घाट के ऊपर श्रृंगारवट पर निवास किया था।
9. श्रीगोविन्दघाट- श्रृंगारघाट के पास ही उत्तर में यह घाट अवस्थित है। श्रीरासमण्डल से अन्तर्धान होने पर श्रीकृष्ण पुन: यहीं पर गोपियों के सामने आविर्भूत हुये थे।
10. चीर घाट- कौतु की श्रीकृष्ण स्नान करती हुईं गोपिकुमारियों के वस्त्रों को लेकर यहीं कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़ गये थे। चीर का तात्पर्य वस्त्र से है। पास ही कृष्ण ने केशी दैत्य का वध करने के पश्चात यहीं पर बैठकर विश्राम किया था। इसलिए इस घाटका दूसरा नाम चैन या चयनघाट भी है। इसके निकट ही झाडूमण्डल दर्शनीय है।

11. श्रीभ्रमरघाट- चीरघाट के उत्तर में यह घाट स्थित है। जब किशोर-किशोरी यहाँ क्रीड़ा विलास करते थे, उस समय दोनों के अंग सौरभ से भँवरे उन्मत्त होकर गुंजार करने लगते थे। भ्रमरों के कारण इस घाट का नाम भ्रमरघाट है।
12. श्रीकेशीघाट- श्रीवृन्दावन के उत्तर-पश्चिम दिशा में तथा भ्रमरघाट के उत्तर में यह प्रसिद्ध घाट विराजमान है। इसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं।
13. धीरसमीरघाट- श्रीवृन्दावन की उत्तर-दिशा में केशीघाट से पूर्व दिशा में पास ही धीरसमीरघाट है। श्रीराधाकृष्ण युगल का विहार देखकर उनकी सेवा के लिए समीर भी सुशीतल होकर धीरे-धीरे प्रवाहित होने लगा था।
14. श्रीराधाबागघाट- वृन्दावन के पूर्व में यह घाट अवस्थित है। इसका भी वर्णन पहले किया जा चुका है।
15. श्रीपानीघाट-इसी घाट से गोपियों ने यमुना को पैदल पारकर महर्षि दुर्वासा को सुस्वादु अन्न भोजन कराया था।
16. आदिबद्रीघाट- पानीघाट से कुछ दक्षिण में यह घाट अवस्थित है। यहाँ श्रीकृष्ण ने गोपियों को आदिबद्री नारायण का दर्शन कराया था।
17. श्रीराजघाट- आदि-बद्रीघाट के दक्षिण में तथा वृन्दावन की दक्षिण-पूर्व दिशा में प्राचीन यमुना के तट पर राजघाट है। यहाँ कृष्ण नाविक बनकर सखियों के साथ श्री राधिका को यमुना पार कराते थे। यमुना के बीच में कौतुकी कृष्ण नाना प्रकार के बहाने बनाकर जब विलम्ब करने लगते, उस समय गोपियाँ महाराजा कंस का भय दिखलाकर उन्हें शीघ्र यमुना पार करने के लिए कहती थीं। इसलिए इसका नाम राजघाट प्रसिद्ध है।

इन घाटों के अतिरिक्त वृन्दावन-कथा नामक पुस्तक में और भी 14 घाटों का उल्लेख है-
(1)महानतजी घाट (2) नामाओवाला घाट (3) प्रस्कन्दन घाट (4) कडिया घाट (5) धूसर घाट (6) नया घाट (7) श्रीजी घाट (8) विहारी जी घाट (9) धरोयार घाट (10) नागरी घाट (11) भीम घाट (12) हिम्मत बहादुर घाट (13) चीर या चैन घाट (14) हनुमान घाट।

वृन्दावन के पुराने मोहल्लों के नाम

(1) ज्ञानगुदड़ी (2) गोपीश्वर, (3) बंशीवट (4) गोपीनाथबाग, (5) गोपीनाथ बाज़ार, (6) ब्रह्मकुण्ड, (7) राधानिवास, (8) केशीघाट (9) राधारमणघेरा (10) निधुवन (11) पाथरपुरा (12) नागरगोपीनाथ (13) गोपीनाथघेरा (14) नागरगोपाल (15) चीरघाट (16) मण्डी दरवाजा (17) नागरगोविन्द जी (18) टकशाल गली (19) रामजीद्वार (20) कण्ठीवाला बाज़ार (21) सेवाकुंज (22) कुंजगली (23) व्यासघेरा (24) श्रृंगारवट (25) रासमण्डल (26) किशोरपुरा (27) धोबीवाली गली (28) रंगी लाल गली (29) सुखनखाता गली (30) पुराना शहर (31) लारिवाली गली (32) गावधूप गली (33) गोवर्धन दरवाजा (34) अहीरपाड़ा (35) दुमाईत पाड़ा (36) वरओयार मोहल्ला (37) मदनमोहन जी का घेरा (38) बिहारी पुरा (39) पुरोहितवाली गली (40) मनीपाड़ा (41) गौतमपाड़ा (42) अठखम्बा (43) गोविन्दबाग (44) लोईबाज़ार (45) रेतियाबाज़ार (46) बनखण्डी महादेव (47) छीपी गली (48) रायगली (49) बुन्देलबाग (50) मथुरा दरवाजा (51) सवाई जयसिंह घेरा (52) धीरसमीर (53) टट्टीया स्थान (54) गहवरवन (55) गोविन्द कुण्ड और (56) राधाबाग।

बांके बिहारी मन्दिर

बांके बिहारी मंदिर मथुरा ज़िले के वृंदावन धाम में रमण रेती पर स्थित है। यह भारत के प्राचीन और प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है। बांके बिहारी कृष्ण का ही एक रूप है जो इसमें प्रदर्शित किया गया है। श्रीधाम वृन्दावन, यह एक ऐसी पावन भूमि है, जिस भूमि पर आने मात्र से ही सभी पापों का नाश हो जाता है। ऐसा आख़िर कौन व्यक्ति होगा जो इस पवित्र भूमि पर आना नहीं चाहेगा तथा श्री बाँकेबिहारी जी के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करना नहीं चाहेगा। यह मन्दिर श्री वृन्दावन धाम के एक सुन्दर इलाके में स्थित है। कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण स्वामी श्री हरिदास जी के वंशजो के सामूहिक प्रयास से संवत 1921 के लगभग किया गया।

बांके बिहारी जी मन्दिर, वृन्दावन

श्री बाँकेबिहारी जी का संक्षिप्त इतिहास

श्रीधाम वृन्दावन, यह एक ऐसी पावन भूमि है, जिस भूमि पर आने मात्र से ही सभी पापों का नाश हो जाता है। ऐसा आख़िर कौन व्यक्ति होगा जो इस पवित्र भूमि पर आना नहीं चाहेगा तथा श्री बाँकेबिहारी जी के दर्शन कर अपने को कृतार्थ करना नहीं चाहेगा। यह मन्दिर श्री वृन्दावन

धाम के एक सुन्दर इलाके में स्थित है। कहा जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण स्वामी श्री हरिदास जी के वंशजो के सामूहिक प्रयास से संवत 1921 के लगभग किया गया।

मन्दिर निर्माण के शुरूआत में किसी दान-दाता का धन इसमें नहीं लगाया गया। श्रीहरिदास स्वामी विषय उदासीन वैष्णव थे। उनके भजन–कीर्तन से प्रसन्न हो निधिवन से श्री बाँकेबिहारीजी प्रकट हुये थे। स्वामी हरिदास जी का जन्म संवत 1536 में भाद्रपद महिने के शुक्ल पक्ष में अष्टमी के दिन वृन्दावन के निकट राजापुर नामक गाँव में हूआ था। इनके आराध्यदेव श्याम–सलोनी सूरत बाले श्रीबाँकेबिहारी जी थे। इनके पिता का नाम गंगाधर एवं माता का नाम श्रीमती चित्रा देवी था। हरिदास जी, स्वामी आशुधीर देव जी के शिष्य थे। इन्हें देखते ही आशुधीर देवजी जान गये थे कि ये सखी ललिताजी के अवतार हैं तथा राधाष्टमी के दिन भक्ति प्रदायनी श्री राधा जी के मंगल–महोत्सव का दर्शन लाभ हेतु ही यहाँ पधारे है। हरिदासजी को रसनिधि सखी का अवतार माना गया है। ये बचपन से ही संसार से ऊबे रहते थे। किशोरावस्था में इन्होंने आशुधीर जी से युगल मन्त्र दीक्षा ली तथा यमुना समीप निकुंज में एकान्त स्थान पर जाकर ध्यान-मग्न रहने लगे। जब ये 25 वर्ष के हुए तब इन्होंने अपने गुरु जी से विरक्तावेष प्राप्त किया एवं संसार से दूर होकर निकुंज बिहारी जी के नित्य लीलाओं का चिन्तन करने में रह गये। निकुंज वन में ही स्वामी हरिदासजी को बिहारीजी की मूर्ति निकालने का स्वप्नादेश हुआ था। तब उनकी आज्ञानुसार मनोहर श्यामवर्ण छवि वाले श्रीविग्रह को धरा को गोद से बाहर निकाला गया। यही सुन्दर मूर्ति जग में श्रीबाँकेबिहारी जी के नाम से विख्यात हुई यह मूर्ति मार्गशीर्ष, शुक्ला के पंचमी तिथि को निकाला गया था। अतः प्राकट्य तिथि को हम विहार पंचमी के रूप में बड़े ही उल्लास के साथ मानते है।

श्री बाँकेबिहारी जी निधिवन में ही बहुत समय तक स्वामी जी द्वारा सेवित होते रहे थे। फिर जब मन्दिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हो गया, तब उनको वहाँ लाकर स्थापित कर दिया गया। सनाढय वंश परम्परागत श्रीकृष्ण यति जी, बिहारी जी के भोग एवं अन्य सेवा व्यवस्था सम्भाले रहे। फिर इन्होंने संवत 1975 में हरगुलाल सेठ जी को श्रीबिहारी जी की सेवा व्यवस्था सम्भालने हेतु नियुक्त किया। तब इस सेठ ने वेरी, कोलकत्ता, रोहतक, इत्यादि स्थानों पर श्रीबाँकेबिहारी ट्रस्टों की स्थापना की। इसके अलावा अन्य भक्तों का सहयोग भी इसमें काफ़ी सहायता प्रदान कर रहा है। आनन्द का विषय है कि जब काला पहाड़ के उत्पात की आशंका से अनेकों विग्रह स्थानान्तरित हुए। परन्तु श्रीबाँकेविहारी जी यहाँ से स्थानान्तरित नहीं हुए। आज भी उनकी यहाँ प्रेम सहित पूजा चल रही हैं। कालान्तर में स्वामी हरिदास जी के उपासना पद्धति में परिवर्तन लाकर एक नये सम्प्रदाय, निम्बार्क संप्रदाय से स्वतंत्र होकर सखीभाव संप्रदाय बना। इसी पद्धति अनुसार वृन्दावन के सभी मन्दिरों में सेवा एवं महोत्सव आदि मनाये जाते हैं। श्रीबाँकेबिहारी जी मन्दिर में केवल शरद पूर्णिमा के दिन श्री श्रीबाँकेबिहारी जी वंशीधारण करते हैं। केवल श्रावन तीज के दिन ही ठाकुर जी झूले पर बैठते हैं एवं जन्माष्टमी के दिन ही केवल उनकी मंगला–आरती होती हैं । जिसके दर्शन सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त होते हैं । और चरण दर्शन केवल अक्षय तृतीया के दिन ही होता है । इन चरण-कमलों का जो दर्शन करता है उसका तो बेड़ा ही पार लग जाता है।

स्वामी हरिदास जी संगीत के प्रसिद्ध गायक एवं तानसेन के गुरु थे। एक दिन प्रातःकाल स्वामी जी देखने लगे कि उनके बिस्तर पर कोई रजाई ओढ़कर सो रहा हैं।यह देखकर स्वामी जी बोले– अरे मेरे बिस्तर पर कौन सो रहा हैं। वहाँ श्रीबिहारी जी स्वयं सो रहे थे। शब्द सुनते ही बिहारी जी निकल भागे। किन्तु वे अपने चुड़ा एवं वंशी, को विस्तर पर रखकर चले गये। स्वामी जी, वृद्ध अवस्था में दृष्टि जीर्ण होने के कारण उनकों कुछ नजर नहीं आय । इसके पश्चात श्री बाँकेबिहारीजी मन्दिर के पुजारी ने जब मन्दिर के कपाट खोले तो उन्हें श्री बाँकेविहारीजी मन्दिर के पुजारी ने जब मन्दिर में कपट खोले तो उन्हें श्रीबाँकेबिहारी जी के पलने में चुड़ा एवं वंशी नजर नहीं आयी। किन्तु मन्दिर का दरवाजा बन्द था। आश्चर्यचकित होकर पुजारी जी निधिवन में स्वामी जी के पास आये एवं स्वामी जी को सभी बातें बतायी। स्वामी जी बोले कि प्रातःकाल कोई मेरे पंलग पर सोया हुआ था। वो जाते वक़्त कुछ छोड़ गया हैं। तब पुजारी जी ने प्रत्यक्ष देखा कि पंलग पर श्रीबाँकेबिहारी जी की चुड़ा–वंशी विराजमान हैं। इससे प्रमाणित होता है कि श्रीबाँकेबिहारी जी रात को रास करने के लिए निधिवन जाते हैं।

इसी कारण से प्रातः श्रीबिहारी जी की मंगला–आरती नहीं होती हैं। कारण–रात्रि में रास करके यहाँ बिहारी जी आते है। अतः प्रातः शयन में बाधा डालकर उनकी आरती करना अपराध हैं। स्वामी हरिदास जी के दर्शन प्राप्त करने के लिए अनेकों सम्राट यहाँ आते थे। एक बार दिल्ली के सम्राट अकबर, स्वामी जी के दर्शन हेतु यहाँ आये थे। ठाकुर जी के दर्शन प्रातः 9 बजे से दोपहर 12 बजे तक एवं सायं 6 बजे से रात्रि 6 बजे तक होते हैं। विशेष तिथि उपलक्ष्यानुसार समय के परिवर्तन कर दिया जाता हैं।

श्रीबाँकेबिहारी जी के दर्शन सम्बन्ध में अनेकों कहानियाँ प्रचलित हैं। जिनमें से एक तथा दो निम्नलिखित हैं– एक बार एक भक्तिमती ने अपने पति को बहुत अनुनय–विनय के पश्चात वृन्दावन जाने के लिए राजी किया। दोनों वृन्दावन आकर श्रीबाँकेबिहारी जी के दर्शन करने लगे। कुछ दिन श्रीबिहारी जी के दर्शन करने के पश्चात उसके पति ने जब स्वगृह वापस लौटने कि चेष्टा की तो भक्तिमति ने श्रीबिहारी जी दर्शन लाभ से वंचित होना पड़ेगा, ऐसा सोचकर वो रोने लगी। संसार बंधन के लिए स्वगृह जायेंगे, इसलिए वो श्रीबिहारी जी के निकट रोते–रोते प्रार्थना करने लगी कि– 'हे प्रभु में घर जा रही हुँ, किन्तु तुम चिरकाल मेरे ही पास निवास करना, ऐसा प्रार्थना करने के पश्चात वे दोनों रेलवे स्टेशन की ओर घोड़ागाड़ी में बैठकर चल दिये। उस समय श्रीबाँकेविहारी जी एक गोप बालक का रूप धारण कर घोड़ागाड़ी के पीछे आकर उनको साथ लेकर ले जाने के लिये भक्तिमति से प्रार्थना करने लगे। इधर पुजारी ने मंदिर में ठाकुर जी को न देखकर उन्होंने भक्तिमति के प्रेमयुक्त घटना को जान लिया एवं तत्काल वे घोड़ा गाड़ी के पीछे दौड़े। गाड़ी में बालक रूपी श्रीबाँकेबिहारी जी से प्रार्थना करने लगे। दोनों में ऐसा वार्तालाप चलते समय वो बालक उनके मध्य से गायब हो गया। तब पुजारी जी मन्दिर लौटकर पुन श्रीबाँकेबिहारी जी के दर्शन करने लगे।

इधर भक्त तथा भक्तिमति श्रीबाँकेबिहारी जी की स्वयं कृपा जानकर दोनों ने संसार का गमन त्याग कर श्रीबाँकेबिहारी जी के चरणों में अपने जीवन को समर्पित कर दिया। ऐसे ही अनेकों कारण से श्रीबाँकेबिहारी जी के झलक दर्शन अर्थात झाँकी दर्शन होते हैं।

झाँकी का अर्थ

श्रीबिहारी जी मन्दिर के सामने के दरवाजे पर एक पर्दा लगा रहता है और वो पर्दा एक दो मिनट के अंतराल पर बन्द एवं खोला जाता हैं, और भी किंवदंती हैं। एक बार एक भक्त देखता रहा कि उसकी भक्ति के वशीभूत होकर श्रीबाँकेबिहारी जी भाग गये। पुजारी जी ने जब मन्दिर की कपाट खोला तो उन्हें श्रीबाँकेबिहारी जी नहीं दिखाई दिये। पता चला कि वे अपने एक भक्त की गवाही देने अलीगढ़ चले गये हैं। तभी से ऐसा नियम बना दिया कि झलक दर्शन में ठाकुर जी का पर्दा खुलता एवं बन्द होता रहेगा। ऐसी ही बहुत सारी कहानियाँ प्रचलित है।
स्वामी हरिदासजी के द्वारा निधिवन स्थित विशाखा कुण्ड से श्रीबाँकेबिहारी जी प्रकटित हुए थे। इस मन्दिर में कृष्ण के साथ श्रीराधिका विग्रह की स्थापना नहीं हुई। वैशाख मास की अक्षय तृतीया के दिन श्रीबाँकेबिहारी के श्रीचरणों का दर्शन होता है। पहले ये निधुवन में ही विराजमान थे। बाद में वर्तमान मन्दिर में पधारे हैं। यवनों के उपद्रव के समय श्रीबाँकेबिहारी जी गुप्त रूप से वृन्दावन में ही रहे, बाहर नहीं गये। श्रीबाँकेबिहारी जी का झाँकी दर्शन विशेष रूप में होता है। यहाँ झाँकी दर्शन का कारण उनका भक्तवात्सल्य एवं रसिकता है।
एक समय उनके दर्शन के लिए एक भक्त महानुभाव उपस्थित हुए। वे बहुत देर तक एक-टक से इन्हें निहारते रहे। रसिक बाँकेबिहारी जी उन पर रीझ गये और उनके साथ ही उनके गाँव में चले गये। बाद में बिहारी जी के गोस्वामियों को पता लगने पर उनका पीछा किया और बहुत अनुनय-विनय कर ठाकुरजी को लौटा-कर श्रीमन्दिर में पधराया। इसलिए बिहारी जी के झाँकी दर्शन की व्यवस्था की गई ताकि कोई उनसे नजर न लड़ा सके। यहाँ एक विलक्षण बात यह है कि यहाँ मंगल आरती नहीं होती। यहाँ के गोसाईयों का कहना है कि ठाकुरजी नित्य-रात्रि में रास में थककर भोर में शयन करते हैं। उस समय इन्हें जगाना उचित नहीं है।

रंग नाथ जी का मन्दिर

श्री सम्प्रदाय के संस्थापक रामानुजाचार्य के विष्णु-स्वरूप भगवान रंगनाथ या रंगजी के नाम से रंग जी का मन्दिर सेठ लखमीचन्द के भाई सेठ गोविन्ददास और राधाकृष्ण दास द्वारा निर्माण कराया गया था। उनके महान गुरु संस्कृत के उद्भट आचार्य स्वामी रंगाचार्य द्वारा दिये गये मद्रास के रंग नाथ मन्दिर की शैली के मानचित्र के आधार पर यह बना था। इसकी लागत पैंतालीस लाख रुपये आई थी। इसकी बाहरी दीवार की लम्बाई 773 फीट और चौड़ाई 440 फीट है। मन्दिर के अतिरिक्त एक सुन्दर सरोवर और एक बाग़ भी अलग से इससे संलग्न किया गया है। मन्दिर के द्वार का गोपुर काफ़ी ऊँचा है। भगवान रंगनाथ के सामने साठ फीट ऊँचा और लगभग बीस फीट भूमि के भीतर धँसा हुआ तांबे का एक ध्वज स्तम्भ बनाया गया। इस अकेले स्तम्भ की लागत दस हज़ार रुपये आई थी। मन्दिर का मुख्य द्वार 93 फीट ऊँचे मंडप से ढका हुआ है। यह मथुरा शैली का है। इससे थोड़ी दूर एक छत से ढका हुआ निर्मित भवन है, जिसमें भगवान का रथ रखा जाता है। यह लकड़ी का बना हुआ है और विशालकाय है। यह रथ वर्ष में केवल एक बार ब्रह्मोत्सव के समय चैत्र में बाहर निकाला जाता है।

रंग नाथ जी का मन्दिर, वृन्दावन

यह ब्रह्मोत्सव-मेला दस दिन तक लगता है। प्रतिदिन मन्दिर से भगवान रथ में जाते हैं। सड़क से चल कर रथ 690 गज़ रंगजी के बाग़ तक जाता है जहाँ स्वागत के लिए मंच बना हुआ है। इस जलूस के साथ संगीत, सुगन्ध सामग्री और मशालें रहती हैं। जिस दिन रथ प्रयोग मे लाया जाता है, उस दिन अष्टधातु की मूर्ति रथ के मध्य स्थापित की जाती है। इसके दोनों ओर चौरधारी ब्राह्मण खड़े रहते हैं। भीड़ के साथ सेठ लोग भी जब-तब रथ के रस्से को पकड कर खींचतें हैं। लगभग ढ़ाई घन्टे के अन्तराल में काफ़ी जोर लगाकर यह दूरी पार कर ली जाती है। अगामी दिन शाम की बेला में आतिशबाजी का शानदार प्रदर्शन किया जाता है। आसपास के दर्शनार्थियों की भीड़ भी इस अवसर पर एकत्र होती है। अन्य दिनों जब रथ प्रयोग में नहीं आता तो भगवान की यात्रा के लिए कई वाहन रहते हैं- कभी जड़ाऊ पालकी तो कभी पुण्य कोठी, तो कभी सिंहासन होता है। कभी कदम्ब तो कभी कल्पवृक्ष रहता है। कभी-कभी किसी उपदेवता को भी वाहन के रूप में प्रयोग किया जाता है। जैसे- सूरज, गरुड़, हनुमान या शेषनाग। कभी घोड़ा, हाथी, सिंह, राजहंस या पौराणिक शरभ जैसे चतुष्पद भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मैमोयर, लेखक-एफ ऐस ग्राउस(1874) का रथ के मेले का व्यय हिसाब

इस समारोह में लगभग पाँच हज़ार रुपये की धनराशि व्यय की जाती है। वर्ष भर के रख-रखाव का व्यय सत्तावन हज़ार से कम नहीं होता। इसमें से तीस हज़ार की सबसे बड़ी मद तो भोग में ही ख़र्च होती है। प्रत्येक सवेरे दस बजे तक आटे का पात्र किसी भी प्रार्थना कर्त्ता को दे दिया जाता है। मन्दिर से 33 गाँवों की जायदाद लगी हुई है। इससे एक लाख सत्रह हज़ार रुपये की आय होती है। इसमें से शासन चौसठ हज़ार रुपये लेता है। इन तैंतीस गाँवों में से चौथाई वृन्दावन समेत तेरह गाँव मथुरा में पड़ते हैं और बीस आगरा ज़िले में। साल भर में भेंट चढ़ावा बीस हज़ार रुपये के लगभग मूल्य का आता है। निधियों में लगाए गए धन से ग्यारह हज़ार आठ सौ रुपये का ब्याज मिलता है।

सन् 1868 में स्वामी ने पूरी जमींदारी एक प्रबंध समिति को हस्तान्तिरित कर दी थी। इसमें दो हज़ार रुपये की टिकटें लगीं थी। स्वामी के बाद श्री निवासाचार्य को नामजद किया गया था, जो अपने पूर्वज की भाँति विद्वान न होकर सामान्य जन की भाँति शिक्षित था। उसके दुराचरण के कारण व्यवस्था करने की आवश्यकता आ पड़ी। उसकी लम्पटता जगजाहिर और कुख्यात थी। उसकी फ़िज़ूलख़र्ची की कोई सीमा नहीं थी। अपने पिता के निधन के बाद वह कुछ गुज़ारा भत्ता पाता रहा। मन्दिर की व्यवस्था-सेवा के लिए मद्रास से दूसरे गुरु लाये गये। जमींदारी पूरी तरह छः सदस्यों की एक समिति के नियंत्रण में रही। इनमें से सबसे उत्साही सेठ नारायण दास थे। सेठ को न्यासियों का मुख़्तार आम बनाया गया था। मन्दिर की बीस लाख की सम्पत्ति इसी सेठ के नाम कर दी गई। इस सुप्रबन्ध के बाद उत्सव समारोहों के आयोजनों में कोई गिरावट नहीं आने पाई और न दातव्यों की उदारता ही घटी बल्कि दफ़्तर के वैतनिक व्यय में भी कमी हुई। प्राभूत वाले गाँवों में से तीन गाँव महावन में और दो जलेसर में थे। जयपुर नरेश मानसिंह ने रंगजी मन्दिर को ये दान किये थे। यद्यपि वह राज सिंहासन का वैधानिक उत्तराधिकारी था फिर भी वह उस पर कभी न बैठा। राजा पृथ्वीसिंह की रानी के गर्भ से वह उसके निधनोपरांत पैदा हुआ था। सन् 1779 ई॰ में पृथ्वीसिंह की मृत्यु के बाद उनके भाई प्रताप सिंह ने उत्तराधिकार का दावा किया। दौलतराव सिंधिया ने इससे भतीजे मानसिंह का अधिकार रोक दिया। मानसिंह युवा राजकुमार था और साहित्य और धर्म के प्रति समर्पित था। तीस हज़ार रुपये वार्षिक आय के आश्वासन पर राजा की उपाधि त्यागकर वह वृन्दावन वास करने लगा। उसने कठिन धार्मिक नियमों के पालन में शेष जीवनकाल यहीं व्यतीत किया। सत्तर वर्ष की आयु में सन् 1848 में उसका वहीं निधन हुआ। सत्ताईस वर्ष पर्यंत पालथी मारे एक ही मुद्रा में बैठा रहा। वह अपने आसन से नहीं उठता था। सप्ताह में बस एक बार ही प्राकृतिक विवशता वश आसन छोड़ता था। पाँच दिन पूर्व ही उसने अपने अन्त की भविष्यवाणी की थी और अपने बूढ़े सेवकों की देखभाल करने की प्रार्थना सेठ से की थी। उनमें से लक्ष्मी नारायण व्यास नामक एक सेवक सन् 1874 तक अपनी मृत्यु पर्यन्त मन्दिर की जमींदारी का प्रबन्धक बना रहा।

गोविन्द देव जी का मंदिर

निर्माण काल - ई. 1590 । संवत 1647
शासन काल - अकबर (मुग़ल)
निर्माता- राजा मानसिंह पुत्र राजा भगवान दास, आमेर (जयपुर, राजस्थान)
शिल्प रूपरेखा एवं निरीक्षण - रूप गोस्वामी और सनातन गुरु, कल्यानदास (अध्यक्ष), माणिक चन्द्र चोपड़ा (शिल्पी), गोविन्द दास और गोरख दास (कारीगर)
निर्माण शैली - हिन्दू (उत्तर-दक्षिण भारत), जयपुरी, मुग़ल, यूनानी और गोथिक[1] का मिश्रण।
लागत मूल्य- एक करोड़ रुपया (लगभग). 5-10 वर्ष में तैयार ।
माप- 105 x 117 फुट (200 x 120 फुट बाहर से) । ऊँचाई- 110 फुट (सात मंज़िल थीं आज केवल चार ही मौजूद हैं)
विशेषता- उत्तरी भारत की स्थापत्य कला का उत्कृष्टतम् नमूना

गोविन्द देव जी का मंदिर, वृन्दावन

गोविन्द देव जी का मंदिर ई. 1590 (सं.1647)में बना । मंदिर के शिला लेख[2] से यह जानकारी पूरी तरह सुनिश्चित हो जाता है कि इस भव्य देवालय को आमेर (जयपुर राजस्थान) के राजा भगवान दास के पुत्र राजा मानसिंह ने बनवाया था । रूप एवं सनातन नाम के दो गुरुऔं की देखरेख में मंदिर के निर्माण होने का उल्लेख भी मिलता है। जेम्स फर्गूसन ने लिखा है कि यह मन्दिर भारत के मन्दिरों में बड़ा शानदार है। मंदिर की भव्यता का अनुमान इस उद्धरण से लगाया जा सकता है 'औरंगज़ेब ने शाम को टहलते हुए, दक्षिण-पूर्व में दूर से दिखने वाली रौशनी के बारे जब पूछा तो पता चला कि यह चमक वृन्दावन के वैभवशाली मंदिरों की है। औरंगज़ेब, मंदिर की चमक से परेशान था, समाधान के लिए उसने तुरंत कार्यवाही के रूप में सेना भेजी। मंदिर, जितना तोड़ा जा सकता था उतना तोड़ा गया और शेष पर मस्जिद की दीवार, गुम्मद आदि बनवा दिए । कहते हैं औरंगज़ेब ने यहाँ नमाज़ में हिस्सा लिया।'
मंदिर का निर्माण में 5 से 10 वर्ष लगे और लगभग एक करोड़ रुपया ख़र्चा बताया गया है। सम्राट अकबर ने निर्माण के लिए लाल पत्थर दिया। श्री ग्राउस के विचार से, अकबरी दरबार के ईसाई पादरियों ने, जो यूरोप के देशों से आये थे, इस निर्माण में स्पष्ट भूमिका निभाई जिससे यूनानी क्रूस और यूरोपीय चर्च की झलक दिखती है।
डा.प्रभुदयाल मीतल ने श्री उदयशंकर शास्त्री के हवाले से बताया है कि ग्राउस का कथन सही नहीं है। 'प्रासाद मंडन में कहा है- प्रासाद (गर्भगृह) के आगे बूढ़ मंडप, उसके आगे छः चौकी, छः चौकी के आगे रंग मंडप, रंग मंडप के आगे तोरणयुक्त मंडप बनना चाहिए। इस मंदिर की सबसे

बड़ी विशेषता इसके मंडप में ही है। इसके खंड आपस में इस सुघड़ता के साथ गुंथे हुए हैं कि उनसे मंदिर के मुख्य जगमोहन की शोभा द्विगुड़ित हो जाती है। इसका व्यास 40 फुट है और लम्बाई चौड़ाई नियमानुसार है। इसकी छत चार कमानी दार आरों (शहतीर नुमा पत्थरों) से बनाई गयी है।...'
ई.1873 में श्री ग्राउस (तत्कालीन ज़िलाधीश मथुरा) ने मंदिर की मरम्मत का कार्य शुरू करवाया जिसमें 38,365 रुपये का ख़र्च आया। जिसमें 5000 रुपये महाराजा जयपुर ने दिया और शेष सरकार ने। मरम्मत और रख रखाव आज भी जारी है लेकिन मंदिर की शोचनीय दशा को देखते हुए यह सब कुछ नगण्य है।

इतिहास
गोस्वामियों ने वृन्दावन आकर पहला काम यह किया कि वृन्दा देवी के नाम पर एक *वृन्दा मन्दिर* का निर्माण कराया। इसका अब कोई चिन्ह विद्यमान नहीं रहा। कुछ का कथन है कि यह सेवाकुंज में था। इस समय यह दीवार से घिरा हुआ एक उद्यान भर है। इसमें एक सरोवर है। यह रास मण्डल के समीप स्थित है। इसकी ख्याति इतनी शीघ्र चारों ओर फैली कि सन् 1573 ई॰ में अकबर सम्राट यहाँ आँखों पर पट्टी बाँधकर पावन निधिवन में आया था। यहाँ उसे ऐसे विस्मयकारी दर्शन हुए कि इस स्थल को वास्तव में धार्मिक भूमि की मान्यता उसे देनी पड़ी। उसने अपने साथ आये राजाओं को अपना हार्दिक समर्थन दिया कि इस पावन भूमि में स्थानीय देवता महनीयता के अनुरूप मन्दिरों की एक शृंखला खड़ी की जाए।
गोविंददेव, गोपीनाथ, जुगल किशोर और मदनमोहन जी के नाम से बनाये गये चार मन्दिरों की शृंखला, उसी स्मरणीय घटना के स्मृति स्वरुप अस्तित्व में आई । वे अब भी हैं किन्तु नितान्त उपेक्षित और भग्नावस्था में विद्यमान हैं। गोविंददेव का मन्दिर इनमें से सर्वोत्तम तो था ही, हिन्दू शिल्पकला का उत्तरी भारत में यह अकेला ही आदर्श था। इसकी लम्बाई चौड़ाई 100-100 फीट है। बीच में भव्य गुम्बद है। चारों भुजायें नुकीलें महराबों से ढ़की हैं। दीवारों की औसत मोटाई दस फीट है। ऊपर और नीचे का भाग हिन्दू शिल्पकला का आदर्श है और बीच का मुस्लिम शिल्प का। कहा जाता है कि मन्दिर के शिल्पकार की सहायता अकबर के प्रभाव के कुछ ईसाई पादरियों ने की थी। यह मिश्रित शिल्पकला का उत्तरी भारत में अपनी क़िस्म का एक ही नमूना है। खजुराहों के मन्दिर भी इसी शिल्प के हैं। मूलभूत योजनानुसार पाँच मीनारें बनवाई गयीं थीं, एक केन्द्रीय गुम्बद पर और चार अन्य गर्भगृह आदि ,पर गर्भगृह पूरा गिरा दिया गया है। दूसरी मीनार कभी पूरी बन ही नहीं पायी। यह सामान्य विश्वास है कि औरंगज़ेब बादशाह ने इन मीनारों को गिरवा दिया था। नाभि के पश्चिम की एक ताख के नीचे एक पत्थर लगा हुआ है जिस पर संस्कृत में लम्बी इबारत लिखी हुई है। इसका लेख बहुत बिगड़ा हुआ है। फिर भी इसका निर्माण संवत 1647 वि0 पढ़ा जा सकता है और यह भी कि रूप और सनातन के निर्देशन में बना था। भूमि से दस फीट ऊँचा लिखा है- [संदर्भ देखें] राजा पृथिवी सिंह जयपुर के महाराजा के पूर्वज थे। उसके सत्रह बेटे थे। उनमें से बारह को जागीरें दी गयीं थी। यह अम्बेर (आमेर-जयपुर) की बारह कोठरी कहलाती हैं। मन्दिर का संस्थापक राजा मानसिंह राव पृथिवीसिंह का पौत्र था।
औरंगजेब के राज से 1873 ई तक मन्दिर के जींणोध्दार का कोई प्रयास नहीं किया गया है। मंदिर को आसपास रहने वालों की दया पर छोड़ दिया गया था। वे इसमें से तोड़-फोड़ कर भवन का सामान भी ले जाते रहे। दीवारों पर बड़े-बड़े झाड़ उग आये। सर विलियम मूर की उपस्थिति में मथुरा के कलक्टर एफ0 एस0 ग्राउस ने मन्दिर को सुरक्षार्थ पुरात्तव विभाग को देना चाहा किन्तु उसने कोई अनुदान नहीं दिया। इसकी मरम्मत के लिए इसके संस्थापक जयपुर नरेश को लिखा गया। नरेश ने इंजीनियरों की कूत के अनुसार रू0 5000 स्वीकार कर लिये। 1873 ई॰ में इसकी मरम्मत का काम आरम्भ हुआ। औरंगजेब द्वारा बनवाई गई दीवार तुड़वा दी गई और मलवा उठवा दिया गया, जो मन्दिर की दीवारों के सहारे-सहारे लगभग आठ-आठ फीट की ऊँचाई तक जमा हो गया और प्लिन्थ (कुर्सी) की सुन्दरता को नष्ट कर रहा था। अनेक मकान मन्दिर की दीवारों के सहारे मन्दिर के आँगन में बन गये थे, वे गिरा दिये गये। इस प्रकार पूर्व और दक्षिण भाग के दो चौड़े विशाल रास्ते खोल दिये गये। पहले मन्दिर में प्रवेश के लिए संकरी और टेड़ी मेढ़ी गली ही थी, जहाँ से पूरे मन्दिर को देखा जा सकता था। नाभिस्थल के उत्तरी भाग में एक टूटे लिंटर को संभालने के लिये एक ईटों का खम्भा बनवा दिया गया था। वह भी गिरा दिया गया। टूटे हुए पत्थर के लिंटर को लोहे के तीन वोल्टों से कसकर साध दिया गया। दक्षिण दिशा में गुम्बद और मीनार वाली एक सुन्दर छतरी थी, जो मन्दिर के चालीस वर्ष बाद बनाई गयी थी। इसके बाद इस सूबे के शासक सर जॉन स्ट्रेची हुए। शासन ने सरकारी कोष से मन्दिर को कुछ अनुदान बाँध दिया था। इससे मन्दिर की पूरी छत की मरम्मत हो सकी। पूर्व का ऊपर का भाग बिल्कुल खस्ता हाल में था। वह उतार कर पुन: पूरा बनवाया गया। उत्तर के और दक्षिण के भागों को भी पुन: बनवाया गया। जगमोहन का भी जीर्णोध्दार कराया गया। स्ट्रेची के बाद आये सर जॉर्ज काउपर ने सन् 1877 ई॰ के मार्च माह तक मन्दिर को नया रूप दिया। इसमें कुल लागत रू0 38365 आई।

राधावल्लभ जी का मन्दिर

यह बहुत ही सुन्दर है। इसके भवन का सौंदर्य और शिल्प लगभग गोवर्धन के हरदेव मन्दिर के जैसा है। यह भी पैमाने का बना है। इसकी नाभि 34 फीट चौड़ी है। ऊपर और नीचे का भाग हिन्दू शिल्प का है और मध्य का भाग मुस्लिम शिल्प का। इसके भीतर 63 फीट x 20 फीट का बड़ा कक्ष है। हरदेव के मन्दिर की भाँति यह मन्दिर भी औरंगज़ेब ने ध्वस्त कर दिया था। इसका पूरा जीर्णोध्दार उन्नीसवीं शती में कराया गया था। इसी के दक्षिण की ओर आधुनिक मन्दिर बनाया गया है। ये पाचों मन्दिर इसी श्रंखला में वास्तु-शिल्प के अद्भुत आदर्श हैं। फरगूसन आदि ने शिखरों पर आश्चर्य व्यक्त किया है। ये शिखर बौद्ध स्तूपों में मिलते हैं। 11वीं शताब्दी का ख़ुजराहो का पार्श्वनाथ मन्दिर और 16वीं शताब्दी के वृन्दावन के मदनमोहन और जुगलकिशोर मन्दिरों मे साम्य है। बनारस का विश्वेश्वर मन्दिर भी इसी शृंखला में है। वास्तव में हुआ यह है कि

मूल मन्दिरों का जीर्णोध्दार जब-जब हुआ, तब-तब उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन आता गया। इसी से लगता है कि इन मन्दिरों का स्थापत्य पुराना नहीं है। वृन्दावन के मदनमोहन मन्दिर के निकटस्थ श्रृंगार बट के मन्दिर के विषय में यही बात उचित ठहरती है। श्रृंगार बट की आय रू. 13500 थी,जो तीन भागीदारों में बॅट जाती थी। जमुना पार का जॅहागीरपुर और बेलबन मन्दिर के प्राभूत के अंश हैं।

राधावल्लभ जी का मन्दिर, वृन्दावन

मदन मोहन जी का मंदिर

- निर्माण काल - संभवत: ई.1590 से 1627 के बीच (सही समय अज्ञात)
- शासन काल-मुग़ल (अकबर-जहाँगीर)
- निर्माता- राम दास खत्री या कपूरी निवासी मुलतान
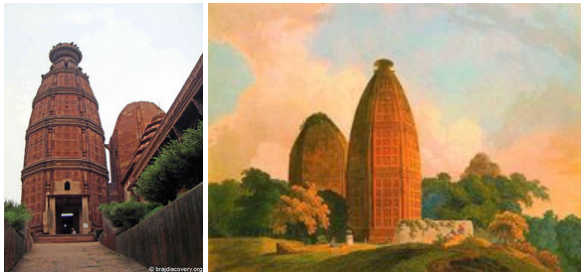
मदन मोहन जी का मंदिर, वृन्दावन

पुरातनता में यह मंदिर गोविन्द देव जी के मंदिर के बाद आता है। निमार्ण के समय और शिल्पियों के संबन्ध में कुछ जानकारी नहीं है। प्रचलित कथाओं में आता है कि राम दास खत्री (कपूरी नाम से प्रचलित) व्यापारी की व्यापारिक सामान से लदी नाव यहाँ यमुना में फंस गयी थी। जो मदन मोहन जी के दर्शन और प्रार्थना के बाद निकल गयी। वापसी में रामदास ने मंदिर बनवाया। श्रीकृष्ण भगवान के अनेक नामों में से एक प्रिय नाम मदनमोहन भी है। इसी नाम से एक मंदिर कालीदह घाट के समीप शहर के दूसरी ओर ऊँचे टीले पर विद्यमान है। विशालकायिक नाग के फन पर भगवान चरणाघात कर रहे हैं। लक्ष्मणदास के भक्त-सिन्धु में इसकी कथा दी गयी है। यह भक्त-माल का आधुनिक संस्करण है। गोस्वामीपाद रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी को गोविन्द जी की मूर्ति नन्दगाँव से प्राप्त हुई थी। यहाँ एक गोखिरख में से खोदकर इसे निकाला गया था, इससे इसका नाम गोविन्द हुआ। वहाँ से लाकर गोविन्द जी को ब्रह्मकुण्ड के वर्तमान मंदिर की जगह पर पधराया गया। वृन्दावन उन दिनों बसा हुआ नहीं था। वे समीपर्वती गाँवों में तथा मथुरा भी भिक्षाटन हेतु जाते थे। एक दिन मथुरा के एक व्यक्ति ने उन्हें मदनमोहन की मूर्ति प्रदान की जिसे उन्होंने लाकर दु:शासन पहाड़ी पर कालीदह के पास पधार दिया। वहीं उन्होंने अपने रहने के लिये एक झोंपड़ी भी बना ली और उस जगह का नाम पशुकन्दन घाट रख दिया। क्योंकि मार्ग इतना ऊँचा-नीचा और ख़राब था कि कोई पशु भी नहीं जा सकता था। 'निचाऊ-ऊँचाऊ देखी विशेषन पशुकन्दन वह घाट कहाई, तहाँ बैठी मनसुख लहाई।' एक दिन पंजाब में मुल्तान का रामदास खत्री- जो कपूरी नाम से अधिक जाना जाता था, आगरा जाता हुआ व्यापार के माल से भरी नाव लेकर यमुना में आया किन्तु कालीदह घाट के पास रेतीले तट पर नाव अटक गयी। तीन दिनों तक निकालने के असफल प्रयासों के बाद वह स्थानीय देवता को खोजने और सहायता माँगने लगा। वह किनारे पर आकर पहाड़ी पर चढ़ा। वहाँ उसे सनातन मिले। सनातन ने व्यापारी से मदनमोहन से प्रार्थना करने का आदेश दिया। उसने ऐसा ही किया और तत्काल नाव तैरने लग गई। जब वह आगरे से माल बेचकर लौटा तो उसने सारा पैसा सनातन को अर्पण कर दिया और उससे वहाँ मंदिर बनाने की विनती की। मंदिर बन गया और लाल पत्थर का घाट भी बना। मन्दिर का मध्य भाग 57 फ़ीट लम्बा और जगमोहन 20'x 20' वर्ग फीट पश्चिमी छोर पर तथा इसी लम्बाई चौड़ाई की पीछे पूजा स्थली है। मध्य भाग में तीन ओर तीन द्वार हैं और पूर्वी छोर पर एक वर्गाकार द्वार है जिसके बाहर 9 या 10 फीट का ढलान है। इसलिये प्रवेश द्वार किनारे की ओर से है। इसकी कुल उँचाई 22 फीट है। इसकी छत गिर गई है। जगमोहन की मीनार भी गिर चुकी है। इसके एकमेव द्वार पर एक पत्थर लगा है। जिस पर बंगाली और देवनागरी में अंकित है। इस समय इसके उभरे अक्षर इतने मिट गये हैं कि कुछ भी स्पष्ट पठनीय नहीं है। पुजारियों ने इसकी कोई चिंता भी नहीं की। मन्दिर की आय लगभग दस हज़ार रुपये थी, जिसमें से आठ हज़ार रुपये भेंट न्यौछावर के होते थे और शेष स्थाई सम्पत्ति से आते थे। वृन्दावन-जैत मार्ग पर रामलाल नामक बाग़ इसकी सम्पत्ति में था। इसी मन्दिर की आय से राधाकुण्ड की शाखा भी व्यवस्थित होती थी। समय-समय पर मन्दिर का जीर्णोध्दार भी कराया जाता रहा है। पत्थरों की जब कमी हुई तो ईटों का प्रयोग किया है। दरवाज़े की एक बैठक पर कन्नौज के किसी यात्री की

यात्रा का तिथी सूचक संवत 1684 वि0 लिखा है। सन् 1875 ई॰ में मन्दिर में काफ़ी सुधार किया गया। चढ़ने के लिये सीढियाँ बनाई गई। पुरानी बाउन्ड्री दीवार तोड़ दी गई। मदनमोहन जी की मूल मूर्ति अब करौली में है। करौली में राजगोपाल सिंह ने 1725 ई॰ में उनके स्वागतार्थ नया मन्दिर बनवाया गया। जिस गुसाईं को मन्दिर का प्रभार सौंपा था, वह मुर्शिदाबाद का रामकिशोर था। इसके बाद मदनकिशोर रहा। करौली के मन्दिर से प्राभूत लगा है जिससे रू0 27000 की वार्षिक आय होती थी। भगवान को दिन में सात बार भोग लगता है। मुख्य है दोपहर को राजभोग और रात को शयनभोग। शेष पाँच भोगों में से मिष्ठान आदि रहता है। सेवाकाल में मंगल आरती होती है। 9 बजे धूप, 11 बजे शृंगार, तीन बजे पुन: धूप, साँझ को सांध्य आरती होती है।
इस मन्दिर के प्रसंग में सूरदास नामक एक वैष्णव भक्त की एक घटना भक्तमाल में वर्णित हुई है। अकबर के शासन में वह संड़ीला का अमीन था। एक अवसर पर मन्दिर में आये पुजारियों और तीर्थ-यात्रियों के स्वागत में उसने अपने ज़िले का तमाम लगान व्यय कर डाला। ख़जाने के बक्स विधिवत् दिल्ली (अकबर की राजधानी आगरा थी। दिल्ली भूलवश लिखा गया प्रतीत होता है।) भेज दिये गये। जब वे खोले गये तो उनमें पत्थरों के अतिरिक्त और कुछ न निकला। हिन्दू मन्त्री टोड़रमल तक को यह अतिशय भक्ति पसंद न आ सकी और वह कारागार में ड़ाल दिया गया। कृपालु भगवान अपने इस भक्त सेवक को नहीं भूल सके और उन्होंने विशेषकर बादशाह को उसे कारागार से मुक्त करने के आदेश दिलाये। सूरदास की नारायण प्रशंसा मूल पाठ में इस प्रकार है। प्रियादास की टीका काफ़ी लम्बी है। [1] अर्थात् भगवान मदनमोहन और सूरदास नाम जंजीर की दो कड़ियों की भाँति अटल रूप में जोड़ दिये। सूरदास काव्य गुण और गान विद्या की राशि थे और सहचरी के अवतार थे। राधा-कृष्ण उनके उपास्य थे और रहस्य लीलाओं के आनन्द के अधिकारी थे। उन्होंने बहुविध नवरसों के प्रमुख श्रृंगार रस के प्रेमगीत अनेक भाँति गाये। मुख से नाम उच्चारण करते ही शृंगार सम्राट हज़ारों बार नंगे पैर दौड़े आये। दोंनो जुड़वां भाइयों (यमलार्जुन) की भाँति भगवान ने सूरदास की अटूट आस्था स्वीकारी और जंजीर की दो कड़ियों की भाँति मदनमोहन को सूरदास के नाम के साथ जोड़ दिया।

जुगलकिशोर जी का मन्दिर

जुगलकिशोर जी का मन्दिर, वृन्दावन

पुरानी शृंखला में यह चौथा है। यह केशी घाट के पास स्थित है। इसका निर्माण जहाँगीर के समय में सन् 1627 ई॰ में हुआ था। इसका निर्माणकर्त्ता नानकरन था। यह चौहान ठाकुर था। परन्तु यह भी असंभव नहीं है कि वह गोपीनाथ मन्दिर के निर्माता रायसिल का बड़ा भाई रहा हो। इसका जगमोहन दूसरे मन्दिरों के जगमोहन की अपेक्षा कुछ बड़ा है जो 25 वर्गफीट का है,द्वार पूर्व को है। किन्तु उत्तर और दक्षिण में भी छोटे-छोटे द्वार हैं। गर्भग्रह नष्ट हो चुका था। ग्राउस ने मन्दिर का जीर्णोध्दार कराया था। नगरपालिका ने ऊपर के कमरे को एक रुपया मासिक किराये पर उठा दिया था जिससे कि कोई उस पर अनाधिकार न कर ले और उस की सफ़ाई होती रहे। कुछ ही दिनों बाद नये कलक्टर के आते ही इसका दुरूपयोग होने लगा और यह पशु घर बन गया था।

गोपी नाथ जी मन्दिर

- निर्माण काल - निश्िचत तिथि अज्ञात
- निर्माता- कछवाहा ठाकुरों की शेखावत शाखा के संस्थापक के पौत्र रायसिल
- निर्माण शैली - मदनमोहन मन्दिर से शिल्प में मिलता जुलता है।
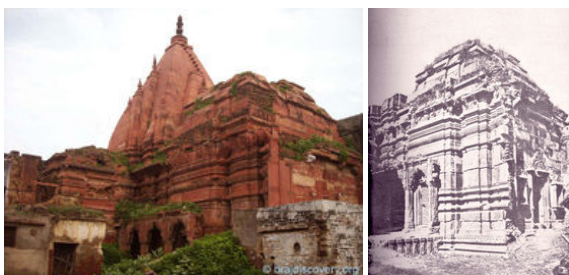
गोपी नाथ जी मन्दिर, वृन्दावन

सन् 1821 ई॰ में एक बंगाली कायस्थ ने नया मन्दिर बनवाया जिसका नाम नन्दकुमार घोष था । इस शृंखला में यह कुछ पहले का मन्दिर है। इसका निर्माण कछवाहा ठाकुरों की शेखावत शाखा के संस्थापक के पौत्र रायसिल ने कराया बताते हैं। अफ़ग़ान आक्रमण को विफल करने में उसने इतनी महानता और विशेषता के साथ काम किया था कि अकबर ने उसे एक जागीर के साथ 1250 घुड़सवारों का मनसबदार बना दिया था। अकबर के अधीन राजा मानसिंह का भी उसने राणाप्रताप के विरुद्ध साथ दिया था और काबुल के अभियान में भी ख्याति अर्जित की थी। उसके निधन की तिथि अज्ञात है। जिस मन्दिर का उसने निर्माण कराया बताते हैं, वह पूर्व वर्णित मदनमोहन मन्दिर से शिल्प में मिलता-जुलता है। यह काफ़ी भग्नावस्था में था। गर्भ गृह पूरा गिर चुका था, तीनों बुर्ज छत से आ लगे थे और दरवाज़ा भी प्राय: गिर चुका था। इसके सहारे छप्पर बन गये थे जिससे यह दिखाई भी नहीं देता था। ग्राउस ने यह छप्पर गिरवा दिये थे। सन् 1821 ई॰ में एक बंगाली कायस्थ ने नया मन्दिर बनवाया जिसका नाम नन्दकुमार घोष था। इसी ने मदनमोहन का नया मन्दिर भी बनवाया था। लगभग 3000 रू0 का भेंट-चढ़ावा इसमें आता था और प्राभूत से 1200 रुपये आते थे।

श्री साक्षी गोपाल का मन्दिर

- श्री गोविन्द मन्दिर के पश्चिम में साक्षीगोपाल मन्दिर का भग्नावशेष अवशिष्ट है।
- प्राचीन गोपाल जी साक्षी देने के लिए विद्यानगर चले गये थे।
- श्री चैतन्यचरितामृत में छोटे-बड़े विप्र के प्रसंग में भक्तवत्सल श्री गोपाल जी का अद्भुत चरित्र वर्णन है।
- वहाँ पर पधारकर श्री गोपाल जी ने जनसमाज में यह साक्षी दी थी कि 'बड़े विप्र ने छोटे विप्र की सेवा से प्रसन्न होकर उससे अपनी बेटी का विवाह करने का वचन दिया था। मैं इसका साक्षी हूँ।'
- कालान्तर में यह विग्रह श्री जगन्नाथ पुरी में पधारे तथा वहाँ से बारह मील दूर सत्यवादीपुर में अब विराजमान हैं।
- अब सत्यवादीपुर का नाम साक्षीगोपाल ही प्रसिद्ध है।
- तभी से वृन्दावन में साक्षीगोपाल का मन्दिर सूनी अवस्था में पड़ा है तथा अब उसका भग्नावशेष ही अवशिष्ट है

केशी घाट

यमुना नदी पार से वृन्दावन का द्रश्य

यमुना के किनारे चीरघाट से कुछ पूर्व दिशा में केशी घाट अवस्थित है। श्रीकृष्ण ने यहाँ केशी दैत्य का वध किया था।
प्रसंग
एक समय सखाओं के साथ कृष्ण यहाँ गोचारण कर रहे थे। सखा मधुमंगल ने हँसते हुए श्रीकृष्ण से कहा-प्यारे सखा! यदि तुम अपना मोरमुकुट, मधुर मुरलिया और पीतवस्त्र मुझे दे दो तो सभी गोप-गोपियाँ मुझे ही प्यार करेंगी तथा रसीले लड्डू मुझे ही खिलाएँगी। तुम्हें कोई पूछेगा भी नहीं। कृष्ण ने हँसकर अपना मोरपंख, पीताम्बर, मुरली और लकुटी मधुमंगल इठलाता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। इतने में ही महापराक्रमी केशी दैत्य विशाल घोड़े का रूप धारण कर कृष्ण का वध करने के लिए हिनहिनाता हुआ वहाँ उपस्थित हुआ। उसने महाराज कंस से सुन रखा था- जिसके सिर पर मोरपंख, हाथों में मुरली, अंगों पर पीतवसन देखो, उसे कृष्ण समझकर अवश्य मार डालना। उसने कृष्ण सजे हुए मधुमंगलको देखकर अपने दोनों पिछले पैरों से आक्रमण किया। कृष्ण ने झपटकर पहले मधुमंगल को बचा लिया। इसके पश्चात केशी दैत्य का वध किया। मधुमंगल को केशी दैत्य के पिछले पैरों की चोट तो नहीं लगी, किन्तु उसकी हवा से ही उसके होश उड़ गये। केशी वध के पश्चात वह सहमा हुआ तथा लज्जित होता हुआ कृष्ण के पास गया तथा उनकी मुरली , मयूरमुकुट, पीताम्बर लौटाते हुए बोला- मुझे लड्डू नहीं चाहिए। प्राण बचे तो लाखों पाये। ग्वाल-बाल हँसने लगे। आज भी केशीघाट इस लीला को अपने हृदय में संजोये हुए विराजमान है।

गोवर्धन

दानघाटी, गोवर्धन

मथुरा नगर के पश्चिम में लगभग 21 किमी की दूरी पर यह पहाड़ी स्थित है। यहीं पर गिरिराज पर्वत है जो 4 या 5 मील तक फैला हुआ है। इस पर्वत पर अनेक पवित्र स्थल है।पुलस्त्य ऋषि के श्राप के कारण यह पर्वत एक मुट्ठी रोज कम होता जा रहा है। कहते हैं इसी पर्वत को भगवान कृष्ण ने अपनी छोटी अँगुली पर उठा लिया था। गोवर्धन पर्वत को गिरिराज पर्वत भी कहा जाता है। गर्ग संहिता में गोवर्धन पर्वत की वंदना करते हुए इसे वृन्दावन में विराजमान और वृन्दावन की गोद में निवास करने वाला गोलोक का मुकुटमणि कहा गया है। पौराणिक मान्यता अनुसार श्री गिरिराजजी को पुलस्त्य ऋषि द्रौणाचल पर्वत से ब्रज में लाए थे। दूसरी मान्यता यह भी है कि जब राम सेतुबंध का कार्य चल रहा था तो हनुमान जी इस पर्वत को उत्तराखंड से ला रहे थे लेकिन तभी देव वाणी हुई की सेतु बंध का कार्य पूर्ण हो गया है तो यह सुनकर हनुमानजी इस पर्वत को ब्रज में स्थापित कर दक्षिण की ओर पुनः लौट गए। पौराणिक उल्लेखों के अनुसार भगवान कृष्ण के काल में यह अत्यन्त हरा-भरा रमणीक पर्वत था। इसमें अनेक गुफ़ा अथवा कंदराएँ थी और उनसे शीतल जल के अनेक झरने झरा करते थे। उस काल के ब्रज-वासी उसके निकट अपनी गायें चराया करते थे, अतः वे उक्त पर्वत को बड़ी श्रद्धा की द्रष्टि से देखते थे। भगवान श्री कृष्ण ने इन्द्र की परम्परागत पूजा बन्द कर गोवर्धन की पूजा ब्रज में प्रचलित की थी, जो उसकी उपयोगिता के लिये उनकी श्रद्धांजलि थी। भगवान श्री कृष्ण के काल में इन्द्र के प्रकोप से एक बार ब्रज में भयंकर वर्षा हुई। उस समय सम्पूर्ण ब्रज जल मग्न हो जाने का आशंका उत्पन्न हो गई थी। भगवान श्री कृष्ण ने उस समय गोवर्धन के द्वारा समस्त ब्रजवासियों की रक्षा की थी। भक्तों का विश्वास है, श्री कृष्ण ने उस समय गोवर्धन को छतरी के समान धारण कर उसके नीचे समस्त ब्रज-वासियों को एकत्र कर लिया था, उस अलौकिक घटना का उल्लेख अत्यन्त प्राचीन काल से ही पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों में और कलाकृतियों में होता रहा है। ब्रज के भक्त कवियों ने उसका बड़ा उल्लासपूर्ण कथन किया है। आजकल के वैज्ञानिक युग में उस आलौकिक घटना को उसी रुप में मानना संभव नहीं है। उसका बुद्धिगम्य अभिप्राय यह ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण के आदेश अनुसार उस समय ब्रजवासियों ने गोवर्धन की कंदराओं में आश्रय लेकर वर्षा से अपनी जीवन रक्षा की थी। गोवर्धन के महत्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना यह है कि यह भगवान कृष्ण के काल का एक मात्र स्थिर रहने वाला चिन्ह है। उस काल का दूसरा चिन्ह यमुना नदी भी है, किन्तु उसका प्रवाह लगातार परिवर्तित होने से उसे स्थाई चिन्ह नहीं कहा जा सकता है। इस पर्वत की परिक्रमा के लिए समूचे विश्व से कृष्णभक्त, वैष्णवजन और वल्लभ संप्रदाय के लोग आते हैं। यह पूरी परिक्रमा 7 कोस (क्रोश) अर्थात लगभग 21 किलोमीटर है। यहाँ लोग दण्डौती परिक्रमा करते हैं। दण्डौती परिक्रमा इस प्रकार की जाती है कि आगे हाथ फैलाकर ज़मीन पर लेट जाते हैं और जहाँ तक हाथ फैलते हैं, वहाँ तक लकीर खींचकर फिर उसके आगे लेटते हैं। इसी प्रकार लेटते-लेटते या साष्टांग दण्डवत् करते-करते परिक्रमा करते हैं जो एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह में पूरी हो पाती है। यहाँ गोरोचन, धर्मरोचन, पापमोचन और ऋणमोचन- ये चार कुण्ड हैं तथा भरतपुर नरेश की बनवाई हुई छतरियां तथा अन्य सुंदर इमारतें हैं। मथुरा से डीग को जाने वाली सड़क गोवर्धन पार करके जहाँ पर निकलती है, वह स्थान दानघाटी कहलाता है। यहाँ भगवान दान लिया करते थे। यहाँ दानरायजी का मंदिर है। इसी गोवर्द्धन के पास 20 कोस के बीच में सारस्वत कल्प में वृन्दावन था तथा इसी के आसपास यमुना बहती थी। मार्ग में पड़ने वाले प्रमुख स्थल आन्यौर, जतिपुरा, मुखारविंद मंदिर, राधाकुण्ड, कुसुम सरोवर, मानसी गंगा, गोविन्द कुण्ड, पूंछरी का लौठा, दानघाटी इत्यादि हैं। राधाकुण्ड से तीन मील पर गोवर्धन पर्वत है। पहले यह गिरिराज 7 कोस में फैले हुए थे, पर अब आप धरती में समा गए हैं। यहीं कुसुम सरोवर है, जो बहुत सुंदर बना हुआ है। यहाँ वज्रनाभ के पधराए हरिदेवजी थे पर औरंगजेबी काल में वह यहाँ से चले गए। पीछे से उनके स्थान पर दूसरी मूर्ति प्रतिष्ठित की गई। यह मंदिर बहुत सुंदर है। यहाँ श्री वज्रनाभ के ही पधराए हुए एकचक्रेश्वर महादेव का मंदिर है। गिरिराज के ऊपर और आसपास गोवर्द्धन ग्राम बसा है तथा एक मनसा देवी का मंदिर है। मानसी गंगा पर गिरिराज का मुखारविन्द है, जहाँ उनका पूजन होता है तथा आषाढ़ी पूर्णिमा तथा कार्तिक की अमावस्या को मेला लगता है। गोवर्द्धन में सुरभि गाय, ऐरावत हाथी तथा एक शिला पर भगवान का चरणचिह्न है। मानसीगंगा पर जिसे भगवान् ने अपने मन से उत्पन्न किया था, दीवाली के दिन जो दीपमालिका होती है, उसमें मनों घी ख़र्च किया जाता है, शोभा दर्शनीय होती है। परिक्रमा की शुरुआत वैष्णवजन जतिपुरा से और सामान्यजन मानसी गंगा से करते हैं और पुनः वहीं पहुँच जाते हैं। पूंछरी का लौठा में दर्शन करना आवश्यक माना गया है, क्योंकि यहाँ आने से इस बात की पुष्टि मानी जाती है कि आप यहाँ परिक्रमा करने आए हैं। परिक्रमा में पड़ने वाले प्रत्येक स्थान से कृष्ण की कथाएँ जुड़ी हैं। मुखारविंद मंदिर वह स्थान है जहाँ पर श्रीनाथजी का प्राकट्य हुआ था। मानसी गंगा के बारे में मान्यता है कि भगवान कृष्ण ने अपनी बाँसुरी से खोदकर इस गंगा का प्राकट्य किया था। मानसी गंगा के प्राकट्य के बारे में अनेक कथाएँ हैं। यह भी माना जाता है कि इस गंगा को कृष्ण ने अपने मन से प्रकट किया था। गिरिराज पर्वत के ऊपर गोविंदजी का मंदिर है। कहते हैं कि भगवान कृष्ण यहाँ शयन करते हैं। उक्त मंदिर में उनका शयनकक्ष है। यहीं मंदिर में स्थित गुफ़ा है जिसके बारे में कहा जाता है कि यह राजस्थान स्थित श्रीनाथ द्वारा तक जाती है। गोवर्धन की परिक्रमा का पौराणिक महत्व है। प्रत्येक माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमा तक लाखों भक्त यहाँ की सप्तकोसी परिक्रमा करते हैं। प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा पर

यहाँ की परिक्रमा लगाने का विशेष महत्व है। श्रीगिरिराज पर्वत की तलहटी समस्त गौड़ीय सम्प्रदाय, अष्टछाप कवि एवं अनेक वैष्णव रसिक संतों की साधना-स्थली रही है।

हरिदेव जी मंदिर

हरिदेव जी मंदिर, गोवर्धन

मानसी गंगा के निकटस्थ इस मन्दिर का निर्माण अम्बर (आमेर) नरेश राजा भगवान दास ने कराया था। 68 फीट लम्बे और 20 फीट चौड़े भूविन्यास के आयता कार मन्दिर का गर्भगृह इसी माप के अनुसार बनाया गया। जिसके चारों ओर खुले मध्य भाग में तीन मेहराब बने हुए हैं। जब कि द्वार के निकट चौथे प्रस्तरवाद हिन्दू शैली की तकनीक के सहारे टिका हुआ है। इसके ऊपरी हिस्से में रौशनदान बने हैं जिस की छज्जे से ऊँचाई लगभग 30 फ़ीट है। जो कि निश्चित दूरी के अन्तर हाथियों और जलव्याघ्र के उभरे सिरों के अलंकृत है। इसके ऊपरी हिस्से में पत्थर की पूरी दोहरी छत थी। जो ऊँची उठी बाहरी और भीतरी मेहराबदार थी। मध्य भाग समतल किन्तु किनारे से यह इतना गहरी मेहराब दार और थी कि इमारत की चौड़ाई कम होते हुए भी मेहराबदार छत का आभास देती है। ऐसी ही चमकती मेहराबदार छत भगवानदास के पुत्र मानसिंह द्वारा वृन्दावन में बनवाये गये गोविन्द देव जी मन्दिर में भी दिखाई पड़ती है।
भूविन्साय के मध्यभाग एवं गर्भगृह पर बने दो शिखरों के छत के बराबर समतल किये जाने के बावजूद भी महाकाय निर्माण का बहिर्भाग भव्य व प्रभावशाली है। इसके निर्माण में भरतपुर खदानों की नींव में आसपास के पत्थरों का उपयोग किया गया। इनसे कई फीट गहरी भर्त की गई। भवन के आधार में मिट्टी भर दी गई ऊँचाई से भवन का स्थायित्व और प्रतीति बढ़ गई। मंदिर के संस्थापक के पिता बिहारीमल पहले राजपूत थे जिन्होंने मुग़ल दरबार से सम्बन्ध स्थापित किये। वे अम्बर के कछवाहा ठाकुरों की राजावत शाखा के मुखिया थे। उनके मुताबिक़ वे इस शाखा के संस्थापक की 18वीं पीढ़ी के वंशज थे। परवर्ती काल में 1728 ई॰ में राजधानी जयपुर स्थानान्तरित हो गई। वर्तमान में महाराजा 34वीं पीढ़ी के वंशज बताये जाते हैं। सरनाल के युद्ध में भगवान दास ने सौभाग्य वश अकबर के जीवन की रक्षा की। तदनन्तर उन्हें पंजाब का गर्वनर नियुक्त किया गया। वहीं 1520 में लाहौर में उनकी मृत्यु हो गई। उनकी पुत्री का विवाह सलीम से हुआ जो अन्तोगत्वा जहाँगीर के खिताब धारण कर बादशाह बना।
मंदिर को भगोसा और लोधीपुरी गाँवों 2,300 रुपये की वार्षिक आय प्राप्त होती थी। इनमें से बाद के गाँव का अनुदान भरतपुर नरेश द्वारा 500 रुपये मासिक दान के बदले में किया गया। मंदिर के वंशानुगत गोसांई लम्बे समय मन्दिर की बनावट और धार्मिक सेवाओं की उपेक्षा करते हुए पूरी आय का उपभोग करते रहे। इस अदूरदर्शी लालच के चलते उत्तरी भारत के प्रसिद्ध तीर्थ मंदिर की वार्शिक आय सिमटकर 50 रुपये रह गयी। इतना ही नहीं बल्कि 1872 ई॰ में मध्य भाग की मज़बूत छत जर्जर होने लगी।
इसके जीर्णोद्धार की ग्राउस द्वारा सिविल कोर्ट से अनुदान स्वीकृत कराने का प्रयास किया गया। साथ ही मन्दिर की प्राप्ति जो कुछ महीनों में साझेदारों के झगड़ों के कारण ज़िला कोशागार में जमा होने लगी थी, जुड़कर 3,000 रुपये हो गई। प्रस्ताव को सहायता प्रदान करने में स्थानीय शासन ने कोई अनिच्छा नहीं जताई और एक अभियन्ता जीर्णोद्धार कार्य की सम्भावित लागत जाँचने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया। किन्तु आयुक्त कार्यालय से पत्राचार करने में दुर्भाग्यवश देर हो गई और इसी बची एक हिस्से को छोड़कर पूरी छत गिर गई। हालाँकि यह जीर्णोद्वार के क्षेत्र में एक प्रतिमान बन सकता था। इसके लिए 8,767 रुपये का अनुमानित ख़र्च निर्धारित कर लिया गया था। इसके साथ ही चूँकि कार्य की शुरूआत के लिए अच्छी बचत भी थी। यदि कार्य बिना देरी किये तत्काल शुरू हो जाता तो दो या तीन वर्षों में बगैर किसी अड़चन के पूरा हो जाता। किन्तु वरिष्ट अधिकारियों ने अप्रैल तक कोई अगला आदेश नहीं दिया। जब आगामी अक्टूबर में अनुमानित ख़र्च प्रस्तुत किया गया। इसी बीच अड़ींग के बनिया छीतरमल ने स्वयं को अमर रखने के इरादे से अल्प व्यय के बल पर जीर्णोद्वार का बीड़ा उठाया और निजी व्यय पर उससे ज़रूरी निर्माण कार्य अपने हाथों में ले लिया। तदनुसार उसने मूल छत के बचे हुए हिस्से को छल्लेदार छज्जे समेत बेरहमी से ध्वस्त करा दिया और उसकी जगह बेडौल लकड़ी दीवारों पर रखवा दी। जिनसे सिर्फ इतना हो सकता था कि आगामी कुछ वर्षों के लिए मौसम से रक्षा हो सकेगी। मगर आकृति में जो कुछ अद्वितीय विशिष्टता थी, अस्तित्व में नहीं रही। इस प्रकार भारतीय स्थापत्य के खण्डित इतिहास के कुछ पन्नों में हमेशा के लिए धब्बे लग गये। वृन्दावन के गोविन्द देव मन्दिर की तर्ज पर यहाँ कोई प्रतिमा नहीं है जिससे अधिकांश हिन्दू धर्मस्थलों की तरह इसकी कलात्मक प्रतीति में अपकर्शण उत्पन्न हो गया। जबकि इसमे मौलिक रूप से मूर्तिपूजा के लिए प्राण प्रतिष्ठित किया गया था। इसमें पवित्रतम विश्वास की जन आनुशणनिक कार्यों के लिए स्थापत्य के सभी अर्थ समाहित थे। यदि इसे राष्ट्रीय स्मारक के रूप में से रक्षित किया गया होता तो भविष्य के किसी स्वर्णिम काल में गोवर्धन का वही स्थान होता जैसा कि प्राचीन रोम का है।

मानसी गंगा

गोवर्धन गाँव के बीच में श्री मानसी गंगा है। परिक्रमा करने में दायीं और पड़ती है और पूंछरी से लौटने पर भी दायीं और इसके दर्शन होते है। एक बार श्री नन्द-यशोदा एंव सभी ब्रजवासी गंगा स्नान का विचार बनाकर गंगा जी की तरफ चलने लगे। चलते-चलते जब वे गोवर्धन पहुँचे तो वहाँ सन्ध्या हो गयी। अतः रात्रि व्यतीत करने हेतु श्री नन्द महाराज ने श्री गोवर्धन में एक मनोरम स्थान सुनिश्चित किया।

मानसी गंगा, गोवर्धन

यहाँ पर श्री कृष्ण के मन में विचार आया कि ब्रजधाम में ही सभी-तीर्थो का वास है, परन्तु ब्रजवासीगण इसकी महान महिमा से अनभिज्ञ है। इसलिये मुझे ही इसका कोई समाधान निकालना होगा। श्री कृष्ण जी के मन में ऐसा विचार आते ही श्री गंगा जी मानसी रुप में गिरिराज की तलहटी में प्रकट हुई। प्रातःकाल जब समस्त ब्रजवासियों ने गिरिराज तलहटी में श्री गंगा जी को देखा तो वे विस्मित होकर एक दूसरे से वार्तालाप करने लगे। सभी को विस्मित देख अन्तर्यामी श्री कृष्ण बोले कि- इस पावन ब्रजभूमि की सेवा हेतु तो तीनों लोकों के सभी-तीर्थ यहाँ आकर विराजते है। परन्तु फिर भी आपलोग ब्रज छोड़कर गंगा स्नान हेतु जा रहे हैं। इसी कारण माता गंगा आपके सम्मुख आविर्भूत हुई हैं। अतः आपलोग शीघ्र ही इस पवित्र गंगा जल में स्नानादि कार्य सम्पन्न करें। श्री नन्द बाबा ने श्री कृष्ण की इस बात को सुनकर सब गोपों के साथ इस में स्नान किया। रात्रि को सब ने दीपावली का दान दिया। तभी से आज तक भी दीपावली के दिन यहाँ असंख्य दीपों की रोशनी की जाती है। श्री कृष्ण के मन से आविर्भूत होने के कारण यहाँ गंगाजी का नाम मानसीगंगा पड़ा। कार्तिक मास की अमावस्या तिथि को श्री गंगा जी यहाँ प्रकट हुई थी। आज भी इस तिथी को स्मरण करते हुए हज़ारों भक्तगण यहाँ स्नान-पूज़ा-अर्चना-दीप दानादि करते हैं। भाग्यवान भक्तों को कभी-कभी इसमें दूध की धारा का दर्शन होता है।
श्री भक्ति विलास में कहा गया है- गंगे दुग्धमये देवी! भगवन्मानसोदवे। भगवान श्री कृष्ण के मन से आविर्भूत होने वाली दुग्धमयी गंगा देवी! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। इस मानसी गंगा का प्रसिद्ध गंगा नदी से सर्वाधिक माहात्म्य है। वह श्री भगवान के चरणों से उत्पन्न हुई है और इसकी उत्पत्ति श्री भगवान के मन से है। इसमें श्री राधाकृष्ण सखियों के साथ यहाँ नौका-विहार की लीला करते हैं। इस मानसी गंगा में श्री रघुनाथ दास गोस्वामीपाद ने श्री राधाकृष्ण की नौंका-विलास लीला का दर्शन किया था। मानसी गंगा में एक बार स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह हज़ारों अश्वमेध यज्ञों तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञों के करने से प्राप्त नहीं होता हैं*। मानसी गंगा के तटों को पत्थरों से सीढ़ियों सहित बनवाने का श्रेय जयपुर के राजा श्री मानसिंह के पिता राजा श्री भगवानदास को है। मानसी गंगा के चारों और दर्शनीय स्थानों के दर्शन करते हुए परिक्रमा लगाते हैं।

परिक्रमा पद्वति

मानसी गंगा की परिक्रमा किसी भी स्थान से किसी भी समय उठा सकते है। मगर जहाँ से परिक्रमा आरम्भ करें वही पर आकर परिक्रमा को विराम देना चाहिए। मुखारविन्द से परिक्रमा प्रारम्भ करते हैं। मानसी गंगा के पूर्व तट पर मुखारविन्द मन्दिर के निकट श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर है। यहाँ से गोवर्धन परिक्रमा मार्ग में चलते हुए श्री हरिदेव जी का मन्दिर है। फिर यहाँ से आगे परिक्रमा मार्ग में चलते हुए दानघाटी पर श्री दानबिहारी जी के मन्दिर के दर्शन होते हैं। चलते-चलते श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, श्री राधा मदनमोहन मन्दिर, श्री बिहारी जी मन्दिर, श्री विश्वकर्मा मन्दिर, श्री वेंकटेश्वर मन्दिर, श्री राधावल्लभ मन्दिर, यहाँ से श्री श्यामसुन्दर मन्दिर, श्री चकलेश्वर महादेव मन्दिर इत्यादि होते हुए श्री मुखारविन्द मन्दिर में आते हुए परिक्रमा को विराम देते है।

मन्दिर तथा कुण्ड समूह

मानसी गंगा के पूर्व दिशा में

श्री मुखारविन्द, श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, श्री किशोरीश्याम मन्दिर, श्री गिरिराज मन्दिर, श्री मन्महाप्रभु जी की बैठक, श्री राधाकृष्ण मन्दिर स्थित हैं।

दक्षिण दिशा में

श्री हरिदेव मन्दिर, ब्रह्मकुण्ड, श्री मनसादेवी मन्दिर, श्री गौरादाऊ जी, श्री गन्धेश्वर महादेव जी, श्री यमुना मोहन जी, श्रीमहादेव-हनुमान जी, श्री बिहारी जी मन्दिर दर्शनीय हैं।

पश्चिम दिशा में

श्री गिरिराज महाराज (श्री साक्षीगोपाल) मन्दिर, श्री विश्वकर्मा, श्री राधाकृष्ण मन्दिर स्थित है।

उत्तर दिशा में

श्री राधाबल्लभ मन्दिर, श्री नरसिंह, श्री श्यामसुन्दर, श्री बिहारी जी, श्री लक्ष्मीनारायण, श्री नाथ जी, श्री नन्दबाबा का मन्दिर, श्री राधारमण, नूतन मन्दिर, श्री अद्वैतदास बाबा का भजन कुटीर, श्री तीन कौड़ी बाबा का आश्रम, सिद्धबाबा का भजन कुटीर, श्री राधागोविन्द मन्दिर, भागवत भजन, श्री चकलेश्वर महादेव, महाप्रभु मन्दिर, राजकुण्ड, झूलन क्रीड़ा स्थान, सिद्ध श्री हनुमान मन्दिर इत्यादि दर्शनीय हैं।

मानसी गंगा के सभी घाटों का निर्माण जयपुर नरेश मानसिंह के पिता राजा भगवानदास ने कराया था। मानसी गंगा का बहुत महत्व है। मानसी गंगा के प्राकट्य की तीन कथायें कही जाती हैं।

1. श्रीकृष्ण ने गोपियों के कहने पर वृष हत्या के पाप से मुक्त होने के लिये अपने मन से इसे प्रकट किया तथा एवं इसमें स्नान कर पाप मुक्त हुए।
2. श्री नन्दबाबा और यशोदा मैया ब्रजवासियों के साथ गंगा स्नान के लिये यात्रा पर जा रहे थे। रात में इन्होंने गोवर्धन में विश्राम किया। कृष्ण ने विचार किया कि जब सारे तीर्थ ब्रज में विद्यमान हैं, तो इतनी दूर क्या जाना? कृष्ण ने भागीरथी गंगा का स्मरण किया और स्मरण करते ही गंगा वहाँ दीपावली के दिन प्रकट हो गयीं। रात्रि में सभी ने दीपदान किया तथा स्नान किया। जब से प्रतिवर्ष लाखों तीर्थयात्री यहाँ दीपावली पर स्नान करते हैं और दीपदान करते हैं।
3. श्रीकृष्ण जी की पटरानी यमुना जी ने अपनी बड़ी बहिन गंगा के ऊपर कृपा करने के लिये कृष्ण से प्रार्थना की। कृष्ण ने यमुना की प्रार्थना सुनकर उसी समय गंगा का आह्वान किया और गोपियों के साथ जल विहार कर उन्हें कृतार्थ किया।

कुसुम सरोवर

- गोवर्धन से लगभग 2 किलोमीटर दूर राधाकुण्ड के निकट स्थापत्य कला के नमूने का एक समूह जवाहर सिंह द्वारा अपने पिता सूरजमल (ई.1707-1763) की स्मृति में बनवाया गया। ई. 1675 से पहले यह कच्चा कुण्ड था जिसे ओरछा के राजा वीर सिंह ने पक्का कराया उसके बाद राजा सूरजमल ने इसे अपनी रानी किशोरी के लिए बाग़-बगीचे का रूप दिया और इसे अधिक सुन्दर और मनोरम स्थल बना दिया।

  कुसुम सरोवर, गोवर्धन

- बाद में जवाहर सिंह ने इसे अपने माता पिता के स्मारक का रूप दे दिया । मुख्य स्मारक 57 फीट वर्गाकार है । स्मारक का सबसे उत्कृष्ट भाग इसकी कुर्सी है जोकि रूपरेखा में सुस्पष्ट और परिष्कृति में उत्कृष्ट है। राजा के स्मारक के बगल में दोनों ओर कुछ छोटे आकार में उनकी रानियों, हँसिया और किशोरी की छतरियाँ बनी हैं। स्मारक 460 फीट लम्बे चबूतरे पर हैं । इसकी पिछली दीवार दोनों किनारों पर पर्दे के सदृष्य प्रतीत होती है और विभिन्न रूपरेखा की दो मंजिली नौ छतरियाँ अग्रभाग में उभार प्रदर्शन को निर्मित की गई हैं। रानी हंसिया के स्मारक के सन्निकट एक विश्वसनीय दासी की छतरी भी है ।
- इसके पीछे एक विस्तीर्ण बगीचा है और सामने की ओर वेदिका के निचले हिस्से पर एक मनोरम तालाब है, जिसे कुसुम सरोवर कहा जाता है। यह सरोवर 460 फीट वर्गाकार है। इसके पत्थरों के सोपान चारों ओर मध्यभाग में टूटे हैं और चार छोटे आकार के कक्ष आच्छादित दीवार के साथ पानी में सरोवर जल के 60 फीट अन्दर तक बने हैं। इसके उत्तर में जवाहर सिंह की छतरी निर्माण के लिए प्रगति हुई थी किन्तु तभी मुसलमानों के आक्रमण के चलते उसका दुबारा निर्माण कार्य शुरू नहीं किया जा सका। उसी ओर झील के घाट क्षतिग्रस्त है। कहा जाता है कि इसके निर्माण के कुछ वर्ष पश्चात ही गोसांई हिम्मत बहादुर निर्माण सामग्री वृन्दावन में घाटों का निर्माण कराने के लिए ले गया। आज भी घाट उसकी स्मृति में कायम है।
- कुसुम सरोवर गोवर्धन के परिक्रमा मार्ग में स्थित एक रमणीक स्थल है जो अब सरकार के संरक्षण में है। उचित देखभाल न होने के कारण अपनी भव्यता और रमणीकता खोता जा रहा है।

बरसाना

बरसाना मथुरा से 42 कि॰मी॰, कोसी से 21 कि॰मी॰, छाता तहसील का एक छोटा-सा गाँव है। बरसाना राधा के पिता वृषभानु का निवास स्थान था। यहाँ लाड़लीजी का बहुत बड़ा मंदिर है। यहाँ की अधिकांश पुरानी इमारत 300 वर्ष पुरानी है। राधा को लोग यहाँ प्यार से 'लाड़लीजी' कहते हैं। बरसाना गांव के पास दो पहाड़ियां मिलती है। उनकी घाटी बहुत ही कम चौड़ी है। मान्यता है कि गोपियां इसी मार्ग से दही-मक्खन बेचने जाया करती थी। यहीं पर कभी-कभी कृष्ण उनकी मटकी छीन लिया करते थे। बरसाना का पुराना नाम ब्रह्मासरिनि था। राधाष्टमी के अवसर पर प्रतिवर्ष यहाँ मेला लगता है।

जयपुर मंदिर, बरसाना

बरसाना कृष्ण की प्रेयसी राधा की जन्मस्थली के रूप में प्रसिद्ध है। इस स्थान को, जो एक बृहत् पहाड़ी की तलहटी में बसा है, प्राचीन समय में बृहत्सानु कहा जाता था (बृहत् सानु=पर्वत शिखर) इसका प्राचीन नाम ब्रह्त्सानु, ब्रह्मसानु अथवा व्रषभानुपुर है। इसके अन्य नाम ब्रह्मसानु या वृषभानुपुर (वृषभानु, राधा के पिता का नाम है) भी कहे जाते हैं। बरसाना प्राचीन समय में बहुत समृद्ध नगर था। राधा का प्राचीन मंदिर मध्यकालीन है जो लाल और पीले पत्थर का बना है। यह अब परित्यक्तावस्था में हैं। इसकी मूर्ति अब पास ही स्थित विशाल एवं परम भव्य संगमरमर के बने मंदिर में प्रतिष्ठापित की हुई है। ये दोनों मंदिर ऊंची पहाड़ी के शिखर पर हैं। थोड़ा आगे चल कर जयपुर-नरेश का बनवाया हुआ दूसरा विशाल मंदिर पहाड़ी के दूसरे शिखर पर बना है। कहा जाता है कि औरंगजेब जिसने मथुरा व निकटवर्ती स्थानों के मंदिरों को क्रूरतापूर्वक नष्ट कर दिया था, बरसाने तक न पहुंच सका था। राधा श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति एवं निकुच्जेश्वरी मानी जाती है। इसलिए राधा किशोरी के उपासकों का यह अतिप्रिय तीर्थ है। बरसाने की पुण्यस्थली बड़ी हरी-भरी तथा रमणीक है। इसकी पहाड़ियों के पत्थर श्याम तथा गौरवर्ण के हैं जिन्हें यहाँ के निवासी कृष्णा तथा राधा के अमर प्रेम का प्रतीक मानते है। बरसाने से 4 मील पर नन्दगांव है, जहां श्रीकृष्ण के पिता नंद जी का घर था। बरसाना-नंदगांव मार्ग पर संकेत नामक स्थान है। जहां किंवदंती के अनुसार कृष्ण और राधा का प्रथम मिलन हुआ था। (संकेत का शब्दार्थ है पूर्वनिर्दिष्ट मिलने का स्थान) यहाँ भाद्र शुक्ल अष्टमी (राधाष्टमी) से चतुर्दशी तक बहुत सुन्दर मेला होता हैं। इसी प्रकार फाल्गुन शुक्ल अष्टमी, नवमी एवं दशमी को आकर्षक लीला होती है। बसंत पंचमी से बरसाना होली के रंग में सरोबार हो जाता है। टेसू (पलाश) के फूल तोड़कर और उन्हें सुखा कर रंग और गुलाल तैयार किया जाता है। गोस्वामी समाज के लोग गाते हुए कहते हैं- "नन्दगाँव को पांडे बरसाने आयो रे।" शाम को 7 बजे चौपाई निकाली जाती है जो लाड़ली मन्दिर होते हुए सुदामा चौक रंगीली गली होते हुए वापस मन्दिर आ जाती है। सुबह 7 बजे बाहर से आने वाले कीर्तन मंडल कीर्तन करते हुए गहवर वन की परिक्रमा करते हैं। बारहसिंघा की खाल से बनी ढ़ाल को लिए पीली पोखर पहुंचते हैं। बरसानावासी उन्हें रुपये और नारियल भेंट करते हैं, फिर नन्दगाँव के हुरियारे भांग-ठंडाई छानकर मद-मस्त होकर पहुंचते हैं। राधा-कृष्ण की झांकी के सामने समाज गायन करते हैं ।

लट्ठामार होली

ब्रह्मगिरी पर्वत स्थित ठाकुर लाड़ीलीजी महाराज मन्दिर के प्रांगण में जब नंदगाँव से होली का न्योता देकर महाराज वृषभानजी का पुरोहित लौटता है तो यहाँ के ब्रजवासी ही नहीं देश भर से आये श्रृद्धालु ख़ुशी से झूम उठते हैं। पांडे का स्वागत करने के लिए लोगों में होड़ लग जाती है। स्वागत देखकर पांडे ख़ुशी से नाचने लगते हैं। राधा कृष्ण की भक्ति में सब अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। लोगों द्वारा लाये गये लड्डूओं को नन्दगाँव के हुरियारे फगुआ के रूप में बरसाना के गोस्वामी समाज को होली खेलने के लिए बुलाते हैं। कान्हा के घर नन्दगाँव से चलकर उनके सखा स्वरूपों ने आकर अपने क़दम बढ़ा दिया। बरसानावासी राधा पक्ष वालों ने समाज गायन में भक्तिरस के साथ चुनौती पूर्ण पंक्तियां प्रस्तुत करके विपक्ष को मुक़ाबले के लिए ललकारते हैं और मुक़ाबला रोचक हो जाता है। लट्ठा-मार होली से पूर्व नन्दगाँव व बरसाना के गोस्वामी समाज के बीच जोरदार मुक़ाबला होता है। नन्दगाँव के हुरियारे सर्वप्रथम पीली पोखर पर जाते हैं। यहाँ स्थानीय गोस्वामी समाज अगवानी करता है। मेहमान-नवाजी के बाद मन्दिर परिसर में दोनों पक्षों द्वारा समाज गायन का मुक़ाबला होता है। गायन के बाद रंगीली गली में हुरियारे लट्ठ झेलते हैं। यहाँ सुघड़ हुरियारी अपने लठ लिए स्वागत को खड़ी मिलती हैं। दोंनों तरफ कतारों में खड़ी हंसी ठिठोली करती हुई हुरियानों को जी भर-कर छेडते हैं। ऐसा लगता है जैसे असल में इनकी सुसराल यहाँ है। इसी अवसर पर जो भूतकाल में हुआ उसे जिया जाता है। यह परम्परा सदियों से चली आ रही है। निश्छ्ल प्रेम भरी गालियां और लाठियां इतिहास को दोबारा दोहराते हुए नज़र आते हैं। बरसाना और नन्दगाँव में इस स्तर की होली होने के बाद भी आज तक कोई एक दूसरे के यहाँ वास्तव में कोई आपसी रिश्ता नहीं हुआ। आजकल भी यहाँ टेसू के फूलों से होली खेली जाती है, रसायनों से पवित्रता के कारण बाज़ारू रंगों से परहेज़ किया जाता है। अगले दिन नन्दबाबा के गाँव में छ्टा होती है। बरसाना के लोह-हर्ष से भरकर मुक़ाबला जीतने नन्दगाँव आयेगें। यहाँ गायन का एक बार फिर कड़ा मुक़ाबला होगा। यशोदा कुण्ड फिर से स्वागत का गवाह बनेगा, भूरा थोक में फिर होगी लट्ठा-मार होली।

राधा रानी मंदिर

राधा रानी मंदिर, बरसाना

बरसाना के बीचो-बीच एक पहाड़ी है जो कि बरसाने के मस्तिष्क पर आभूषण के समान है। उसी के ऊपर राधा रानी मंदिर है इस मंदिर को बरसाने की लाड़ली जी का मंदिर भी कहा जाता है। राधा का प्राचीन मंदिर मध्यकालीन है जो लाल और पीले पत्थर का बना है। राधा-कृष्ण को समर्पित इस भव्य और सुन्दर मंदिर का निर्माण राजा वीर सिंह ने 1675 में करवाया था। बाद मे स्थानीय लोगो द्वारा पत्थरो को इस मंदिर में लगवाया। राधा जी को प्यार से बरसाना के लोग ललि जी और वृषभानु दुलारी भी कहा जाता है। राधाजी के पिता का नाम वृषभान और उनकी माताजी का नाम कीर्ति था। राधा रानी का मंदिर बहुत ही सुन्दर और मनमोहक है। राधा रानी मंदिर क़रीब ढाई सौ मीटर ऊंची पहाड़ी पर बना है और इस मंदिर में जने के लिए सैकड़ों सीढ़ियां चढ़नी पढ़ती है। राधा श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति एवं निकुच्जेश्वरी मानी जाती है। इसलिए राधा किशोरी के उपासकों का यह अतिप्रिय तीर्थ है। बरसाने की पुण्यस्थली बड़ी हरी-भरी तथा रमणीक है। इसकी पहाड़ियों के पत्थर श्याम तथा गौरवर्ण के हैं जिन्हें यहाँ के निवासी कृष्णा तथा राधा के अमर प्रेम का प्रतीक मानते है। बरसाने से 4 मील पर नन्दगांव है, जहाँ श्रीकृष्ण के पिता नंद जी का घर था। बरसाना-नंदगांव मार्ग पर संकेत नामक स्थान है। जहाँ किंवदंती के अनुसार कृष्ण और राधा का प्रथम मिलन हुआ था। (संकेत का शब्दार्थ है पूर्वनिर्दिष्ट मिलने का स्थान) यहाँ भाद्र शुक्ल अष्टमी (राधाष्टमी) से चतुर्दशी तक बहुत सुन्दर मेला होता हैं। इसी प्रकार फाल्गुन शुक्ल अष्टमी, नवमी एवं दशमी को आकर्षक लीला होती है। लाड़ली जी के मंदिर में राधाष्टमी का त्यौहार बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार भद्रपद माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है।

राधाष्टमी

बरसाने में राधाष्टमीका त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। राधाष्टमी के दिन राधा रानी मंदिर को दुल्हन की तरह सजाया जाता है। राधाष्टमी का पर्व जन्माष्टमी के 15 दिन बाद भद्रपद माह की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। राधाष्टमी पर्व बरसाना वासियो के लिए अति महत्वपूर्ण है। राधाष्टमी के दिन राधा जी के मंदिर में फूलों और फलों से सजाया जाता है। पूरे बरसाने में इस दिन उत्सव का महौल होता है। राधाष्टमी के उत्सव में राधाजी को लड्डूओं का भोग लगाया जाता है और उस भोग को मोर को खिला दिया जाता है। राधा रानी को छप्पन प्रकार के व्ययंजनो का भोग लगाया जाता है और इसे बाद में मोर को खिला दिया जाता है। मोर को राधा-कृष्ण का स्वरूप माना जाता है। बाकी प्रसाद को श्रद्धालुओं मे बांट दिया जाता है। राधा रानी मंदिर में श्रद्धालु बधाई गान गाते है और नाच गाकर राधाष्टमी का त्यौहार मनाते है। राधाष्टमी के उत्सव के लिए राधाजी के महल को काफ़ी दिन पहले से सजाया जाता है। राधाष्टमी के पर्व पर श्रद्धालु गहवरवन की परिक्रमा भी लगाते है। राधाष्टमी के अवसर पर राधा रानी मंदिर के सामने मेला लगाता है।

मंदिर में होली

बरसाने में होली का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। बरसाना में लट्ठमार होली की शुरुआत सोलहवीं शताब्दी में हुई थी। तब से बरसाना में यह परंपरा यूं ही निभाई जा रही है, जिसके अनुसार वसंत पंचमी के दिन मंदिर में होली का डांढ़ा गड़ जाने के बाद हर शाम गोस्वामी समाज के लोग धमार गायन करते हैं। प्रसाद में दर्शनार्थियों पर गुलाल बरसाया जाता है। इस दिन राधा जी के मंदिर से पहली चौपाई निकाली जाती है जिसके पीछे-पीछे गोस्वामी समाज के पुरुष झांडा-मंजीरे बजाते हुए होली के पद गाते चलते हैं। बरसाना की रंगीली गली से होकर बाज़ारों से रंग उड़ाती हुई यह चौपाई सभी को होली के आगमन का एहसास करा देती है। मंदिर में पंडे की अच्छी ख़ासी खातिर की जाती है। यहां तक कि उस पर क्विंटल के हिसाब से लड्डू बरसाए जाते हैं जिसे पांडे लीला कहा जाता है। श्रद्धालु राधा जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मंदिर में होती हैं तो उन पर वहाँ के सेवायत चारों तरफ से केसर और इत्र पडे टेसू के रंग और गुलाल की बौछार करते हैं। मंदिर का लंबा चौड़ा प्रांगण रंग-गुलाल से सराबोर हो जाता है।

नन्दगाँव

नन्द जी मंदिर, नन्दगांव

- नन्दगाँव ब्रजमंडल का प्रसिद्ध तीर्थ है। मथुरा से यह स्थान 30 किलोमीटर दूर है। यहाँ एक पहाड़ी पर नन्द बाबा का मन्दिर है। नीचे पामरीकुण्ड नामक सरोवर है। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला हैं।
- भगवान कृष्ण के पालक पिता से सम्बद्ध होने के कारण यह स्थान तीर्थ बन गया है। नन्दगाँव में ब्रजराज श्रीनन्दमहाराज जी का राजभवन है। यहाँ श्रीनन्दराय, उपानन्द, अभिनन्द, सुनन्द तथा नन्द ने वास किया है, इसलिए यह नन्दगाँव सुखद स्थान है।
- गोवर्धन से 16 मील पश्चिम उत्तर कोण में, कोसी से 8 मील दक्षिण में तथा वृन्दावन से 28 मील पश्चिम में नन्दगाँव स्थित है। नन्दगाँव की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) चार मील की है। यहाँ पर कृष्ण लीलाओं से सम्बन्धित 56 कुण्ड हैं। जिनके दर्शन में 3–4 दिन लग जाते हैं।
- देवाधिदेव महादेव शंकर ने अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर यह वर माँगा था कि मैं आपकी बाल्यलीलाओं का दर्शन करना चाहता हूँ। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने नन्दगाँव में उन्हें पर्वताकार रूप में स्थित होने का आदेश दिया। श्रीशंकर महादेव भगवान के आदेश से नन्दगाँव में नन्दीश्वर पर्वत के रूप में स्थित होकर अपने आराध्य देव के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। श्रीकृष्ण परम वैष्णव शंकर की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए नन्दीश्वर पर्वत पर ब्रजवासियों विशेषत: नन्दबाबा, यशोदा मैया तथा गोप सखाओं के साथ अपनी बाल्य एवं पौगण्ड अवस्था की मधुर लीलाएँ करते हैं।
- द्वापरयुग के अन्त में देवमीढ़ नाम के एक मुनि थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक क्षत्रिय वंश की, दूसरी गोप वंश की थीं। पहली क्षत्रिय पत्नी से शूरसेन तथा दूसरी गोपपत्नी से पर्जन्य गोप पैदा हुये। शूरसेन से वसुदेव आदि क्षत्रिय पुत्र उत्पन्न हुए। पर्जन्य गोप कृषि और गोपालन के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। पर्जन्य गोप अपनी पत्नी वरीयसी गोपी के साथ नन्दीश्वर पर्वत के निकट निवास करते थे। देवर्षि नारद भ्रमण करते–करते एक समय वहाँ आये। पर्जन्यगोप ने विधिवत पूजा के द्वारा उनको प्रसन्न कर उनसे उत्तम सन्तान प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद माँगा। नारद जी ने उनको लक्ष्मीनारायण मन्त्र की दीक्षा दी और कहा, इस मन्त्र का जप करने से तुम्हें उत्तम सन्तान की प्राप्ति होगी। नारद जी के चले जाने पर वे पास ही तड़ाग तीर्थ में स्नान कर वहीं गुरुप्रदत्त मन्त्र का प्रतिदिन नियमानुसार जप करने लगे। एक समय मन्त्र जप के समय आकाशवाणी हुई कि- हे पर्जन्य! तुमने ऐकान्तिक रूप में मेरी आराधना की है। तुम परम सौभाग्यवान हो। समस्त गुणों से गुणवान तुम्हारे पाँच पुत्र होंगे। उनमें से मध्यम पुत्र नन्द होगा, जो महासौभाग्यवान होगा। सर्वविजयी, षडैश्वर्यसम्पन्न, प्राणीमात्र के लिए आनन्ददायक श्रीहरि स्वयं उनके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे। ऐसी आकाशवाणी सुनकर पर्जन्यगोप बहुत प्रसन्न हुए। कुछ दिनों के पश्चात उन्हें पाँच पुत्र और दो कन्याएँ पैदा हुई। वे कुछ और दिनों तक नन्दीश्वर पर्वत के निकट रहे, किन्तु कुछ दिनों के बाद केशी दैत्य के उपद्रव से भयभीत होकर वे अपने परिवार के साथ गोकुल महावन में जाकर बस गये। वहीं मध्यमपुत्र नन्दमहाराज के पुत्र के रूप में स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हुए।

लट्ठामार होली

बरसाना और नंदगाँव की लठमार होली तो जगप्रसिद्ध है। "नंदगाँव के कुँवर कन्हैया, बरसाने की गोरी रे रसिया" और 'बरसाने में आई जइयो बुलाए गई राधा प्यारी' गीतों के साथ ही ब्रज की होली की मस्ती शुरू होती है। वैसे तो होली पूरे भारत में मनाई जाती है लेकिन ब्रज की होली ख़ास मस्ती भरी होती है. वजह ये कि इसे कृष्ण और राधा के प्रेम से जोड़ कर देखा जाता है। उत्तर भारत के बृज क्षेत्र में बसंत पंचमी से ही होली का चालीस दिवसीय उत्सव आरंभ हो जाता है। नंदगाँव एवं बरसाने से ही होली की विशेष उमंग जागृत होती है। जब नंदगाँव के गोप गोपियों पर रंग डालते, तो नंदगांवकी गोपियां उन्हें ऐसा करनेसे रोकती थीं और न माननेपर लाठी मारना शुरू करती थीं। होली की टोलियों में नंदगाँव के पुरूष होते हैं क्योंकि कृष्ण यहीं के थे और बरसाने की महिलाएं क्योंकि राधा बरसाने की थीं। दिलचस्प बात ये होती है कि ये होली बाकी भारत में खेली जाने वाली होली से पहले खेली जाती है। दिन शुरू होते ही नंदगाँव के हुरियारों की टोलियाँ बरसाने पहुँचने लगती हैं. साथ ही पहुँचने लगती हैं कीर्तन मंडलियाँ। इस दौरान भाँग-ठंढई का ख़ूब इंतज़ाम होता है। ब्रजवासी लोगों की चिरौंटा जैसी आखों को देखकर भाँग ठंढई की व्यवस्था का अंदाज़ लगा लेते हैं। बरसाने में टेसू के फूलों के भगोने तैयार रहते हैं। दोपहर तक घमासान लठमार होली का समाँ बंध चुका होता है। नंदगाँव के लोगों के हाथ में पिचकारियाँ होती हैं और बरसाने की महिलाओं के हाथ में लाठियाँ, और शुरू हो जाती है होली।

- कुछ समय बाद वहाँ महावन में भी पूतना, शकटासुर तथा तृणावर्त आदि दैत्यों के उत्पाद को देखकर व्रजेश्वर श्रीनन्दमहाराज अपने पुत्रादि परिवार वर्ग तथा गो, गोप, गोपियों के साथ छटीकरा ग्राम में, फिर वहाँ से काम्यवन, खेलनवन आदि स्थानों से होकर पुन: नन्दीश्वर (नन्दगाँव) में लौटकर यहीं निवास करने लगे। यहीं पर कृष्ण की बाल्य एवं पौगण्ड की बहुत सी लीलाएँ हुई। यहीं से गोपाष्टमी

के दिन पहले बछड़ों और बछड़ियों को तथा दो–चार वर्षों के बाद गोपाष्टमी के दिन से ही कृष्ण और बलदेव सखाओं के साथ गायों को लेकर गोचारण के लिए जाने लगे। यहाँ नन्दगाँव में कृष्ण की बहुत सी दर्शनीय लीलास्थलियाँ है।

नन्दभवन

नन्दीश्वर पर्वत से संलग्न दक्षिण की ओर नन्दभवन की पौढ़ी का भग्नावशेष नाममात्र अवशिष्ट है । यहीं पर विशाल नन्दभवन था । इसमें नन्दबाबा, माँ यशोदा, माँ रोहिणी, कृष्ण और बलदेव सबके अलग–अलग शयनघर, रसोईघर, भाण्डारघर, भोजनस्थल, राधिका एवं कृष्ण के विश्रामस्थल आदि कक्ष विराजमान थे । यहीं पर कृष्ण और बलदेव ने अपनी बाल्य, पौगण्ड और किशोर अवस्था तक की बहुत सी लीलाएँ की हैं । यहीं पर माँ यशोदा के अत्यन्त आग्रह और प्रीतिपूर्वक अनुरोध से सखियों के साथ राधिका प्रतिदिन पूर्वाह्व में जावट ग्राम से आकर परम उल्लासपूर्वक माँ रोहिणी के साथ कृष्ण के लिए रूचिकर द्रव्यों का पाक करती थीं । कृष्ण पास के बृहत भोजनागार में सखाओं के साथ भोजन करते थे । भोजन के पश्चात एक सौ पग चलकर शयनागार में विश्राम करते थे ।

राधिका विश्रामस्थल

रन्धन का कार्य समाप्त होने के पश्चात राधिका माँ यशोदा के अनुरोध से श्री धनिष्ठा सखी के द्वारा लाये हुए श्रीकृष्ण के भुक्तावशेष के साथ प्रसाद पाकर इसी बगीचे में विश्राम करती थी । उसी समय सखियाँ दूसरों से अलक्षित रूप में कृष्ण का उनके साथ मिलन कराती थी । इस स्थान का नाम राधाबाग है ।

वनगमन स्थान

माँ यशोदा बलराम और कृष्ण का प्रतिदिन नाना रूप से श्रृंगार कर उन्हें गोचारण के लिए तैयार करती थीं । तथा व्याकुल चित्त से सखाओं के साथ गोचारण के लिए विदा करती थीं ।

गोचारण गमन मार्ग

सखाओं के साथ नटवर राम–कृष्ण गोचारण के लिए इसी मार्ग से होकर निकलते थे ।

राधिका विदा स्थल

माँ यशोदा राधिका को गोदी में बैठाकर रोती हुई उसे जावट ग्राम के लिए यहीं से विदा करती थी ।

दधिमन्थन का स्थान

यशोदा जी यहाँ नित्यप्रति प्रातःकाल दधिमन्थन करती थीं । आज भी यहाँ एक बहुत बड़ी दधि की मटकी दर्शनीय है ।

पूर्णमासीजी का आगमन पथ

बालकृष्ण का दर्शन करने के लिए योगमाया पौणमासी इसी पथ से नन्दभवन में पधारती थीं । ये सारे स्थान बृहदाकार नन्दभवन में स्थित हैं ।
श्रीरघुपति उपाध्याय ने नन्दभवन का सरस शब्दों में वर्णन किया है–
श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः ।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ।। (पद्यावली)[2]

नन्दकुण्ड

नन्दभवन से थोड़ी दूर दक्षिण में नन्दकुण्ड है । महाराज नन्द प्रतिदिन प्रातः काल यहाँ स्नान, सन्ध्या मन्त्र जप आदि करते थे । कभी–कभी कृष्ण और बलराम को भी अपने कन्धों पर बिठाकर लाते थे । और उन्हें भी स्नान कराते थे । कुण्ड के तट पर स्थित मन्दिर में नन्दबाबा और उनकी गोद में बैठे बालस्वरूप कृष्ण एवं दाऊजी की बड़ी मनोहर झाँकी हैं ।

नन्द बैठक

ब्रजेश्वर महाराज नन्द यहाँ पर अपने बड़े और छोटे भाईयों, वृद्ध गोपों तथा पुरोहित आदि के साथ समय–समय पर बैठकर कृष्ण के कल्याणार्थ विविध प्रकार के परामर्श आदि करते थे । बैठकर परामर्श करने के कारण इसे बैठक कहा गया है । चौरासी कोस ब्रज में महाराज नन्द की बहुत सी बैठकें हैं । नन्दबाबा गोकुल के साथ जहाँ भी विराजमान होते, वहीं पर समयोचित बैठकें हुआ करती थीं । इसी प्रकार की बैठकें छोटी और बड़ी बैठन तथा अन्य स्थानों में भी हैं । नन्दबाबा , गो, गोप, गोपी आदि के साथ जहाँ भी निवास करते थे । उसे नन्दगोकुल कहा जाता था । बैठकें कैसे होतीं थीं, उसका एक प्रसंग इस प्रकार है–
प्रसंग गिरिराज गोवर्धन को सात दिनों तक अपनी कनिष्ठ अंगुली पर धारणकर सप्त वर्षीय कृष्ण ने इन्द्र का घमण्ड चकनाचूर कर दिया था । इससे सभी वृद्ध गोप बड़े आश्चर्यचकित हुए । उन्होंने एक बैठक की । ज्येष्ठ भ्राता उपानन्द उस बैठक के सभापति हुए । नन्दबाबा भी उस

बैठक में बुलाये गये । वृद्ध गोपों ने बैठक में अपना–अपना यह मन्तव्य प्रकट किया कि श्रीकृष्ण एक साधारण बालक नहीं हैं । जन्मते ही पूतना जैसी भयंकर राक्षसी को खेल–ही–खेल में मार डाला। तत्पश्चात शकटासुर, तृणावर्त, अघासुर आदि को मार गिराया । कालीय जैसे भयंकर नाग का भी दमनकर उसके कालीदह से बाहर कर दिया । अभी कुछ ही दिन हुए गिरिराज जैसे विशाल पर्वत को सात दिनों तक अपनी कनिष्ठ अंगुली पर धारण कर मूसलाधार वृष्टि और आँधी–तूफान से सारे ब्रज की रक्षा की । यह साधारण बालक का कार्य नहीं है । हमें तो ऐसा लगता है कि यह कोई सिद्ध पुरुष, देवता अथवा स्वयं नारायण ही हैं । नन्द और यशोदा का पुत्र मानकर इसे डाँटना, डपटना, चोर, उद्दण्ड आदि सम्बोधन करना उचित नहीं है। अत: नन्द, यशोदा और गोप, गोपी सावधानी से सदैव इसके साथ प्रीति और गौरवमय व्यवहार ही करें । उपस्थित सभी गोपों ने इस वक्तव्य को बहत ही गम्भीर रूप से ग्रहण किया । सभी ने मिलकर नन्दबाबा को इस विषय में सतर्क कर दिया । नन्दबाबा ने हँसते हुए उनकी बातों को उड़ा दिया और कहा– आदरणीय सज्जनों ! आपका वक्तव्य मैं ने श्रवण किया, किन्तु मैं कृष्ण में लेशमात्र भी किसी देवत्व या भगवत्ता का लक्षण नहीं देख रहा हूँ । मैं इसे जन्म से जानता हूँ भला भगवान को भूख और प्यास लगती है ? यह मक्खन और रोटी के लिए दिन में पचास बार रोता है । क्या भगवान चोरी करता और झूठ बोलता है ? यह गोपियों के घरों में जाकर मक्खन चोरी करता है, झूठ बोलता है तथा नाना प्रकार के उपद्रव करता है । पड़ोस की गोपियाँ इसे चुल्लूभर मठ्ठे के लिए, लड्डू के लिए तरह-तरह से नचाती और इसके साथ खिलवाड़ करती हैं । जैसा भी हो, जब इसने हमारे घर में पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया है, तब इसके प्रति हमारा यही कर्तव्य है भविष्य में से यह सदाचार आदि सर्वगुणसम्पन्न आदर्श व्यक्ति बने । हाँ एक बात है कि महर्षि गर्गाचार्य ने नामकरण के समय यह भविष्यवाणी की थी कि तुम्हारा यह बालक गुणों में भगवान नारायण के समान होगा । अत: चिन्ता की कोई बात नहीं हैं । इसके अतिरिक्त कभी–कभी कृष्ण के हित में, उसकी सगाई के लिए तथा अन्य विषयों के लिए समय–समय पर बैठकें हुआ करती थीं ।

यशोदा कुण्ड

नन्दभवन के उत्तर में यह कुण्ड अवस्थित है । माँ यशोदा यहाँ प्रतिदिन स्नान करती थीं । कभी–कभी कृष्ण और बलराम को भी साथ लाती थीं । तथा उन दोनों बालकों की बाल क्रीड़ा का दर्शनकर अत्यन्त आनन्दित होती थीं । कुण्ड के तट पर नृसिंह जी का मन्दिर है । माँ यशोदा स्नान करने के यशोदा कुण्ड के पास ही निर्जन स्थल में एक प्राचीन गुफ़ा है । जहाँ अनेक सन्त महानुभावों ने साधनाकर भगवद प्राप्ति की है । सिद्ध महात्माओं की यह भजन स्थली आज तक निरपेक्ष साधकों को भजने के लिए आकर्षित करती है । यशोदाकुण्ड के पास ही कारोहरो कुण्ड है ।

हाऊबिलाऊ

यशोदा कुण्ड के पश्चिमी तट पर सखाओं के साथ कृष्ण की बालक्रीड़ा का यह स्थान है । यहाँ सखाओं के साथ कृष्ण बलदेव दोनों भाई बालक्रीड़ा करने में इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भोजन करने का भी स्मरण नहीं रहता था । मैया यशोदा कृष्ण बलराम को बुलाने के लिए रोहिणी जी को पहले भेजतीं, किन्तु जब वे बुलाने जातीं तो उनकी पकड़ में ये नहीं आते, इधर उधर जाते थे । इसके पश्चात यशोदा जी स्वयं जातीं और नाना प्रकार की भंगिमा के द्वारा बड़ी कठिनता से दोनों को पकड़कर घर लाती और उन्हें स्नान आदि कराकर भोजन करातीं । कभी -कभी यहीं पर राम कृष्ण को हाऊओ का भय दिखाकर कृष्ण को गोदी में पकड़कर ले आतीं । उस समय कृष्ण मैया से हाओ दिखाने का हठ करते । मैया ! मैं हऊआ देखूँगा । आज भी हऊआ की प्रस्तरमयी मूर्तियाँ कृष्ण की इस मधुर बाललीला का स्मरण कराती हैं ।
दूर खेलन मत जाउ लाल यहाँ हाऊ आये हैं ।
हँस कर पूछत कान्ह मैया यह किनै पठाये हैं ।

मधुसूदनकुण्ड

नन्दीश्वर के उत्तर में यशोदाकुण्ड के पास ही नाना प्रकार के पुष्पों से लदे हुए वृक्ष और लताओं के बीच में यह कुण्ड सुशोभित है । यहाँ मत्त हो कर भ्रमरगण सदैव पुष्पों का मकरन्द पान करते हुए सर्वत्रगुञ्जन करते हैं कृष्ण सखाओं के साथ वन में खेलते हुए भ्रमरों के गुञ्जन का अनुकरण करते हैं । भ्रमरों का दूसरा एक नाम मधुसूदन भी है तथा कृष्ण का भी एक नाम मधुसूदन है । दोनों के यहाँ गुञ्जन का स्थान होने के कारण इस स्थान का नाम मधुसूदन कुण्ड है ।

पानीहारीकुण्ड

इसका नामान्तर पनघट कुण्ड भी है । ब्रजवासी इसी कुण्ड का विशुद्ध मीठाजल पान करते थे । गोप रमणियाँ इस कुण्ड पर जल भरने के लिए आती थीं । इसलिए इसे पनघट कुण्ड भी कहते हैं । कृष्ण भी गोपियों के साथ मिलने के लिए पनघट पर उपस्थित होते । विशेषकर गोपियाँ कृष्ण से मिलने के लिए ही उत्कण्ठित हो कर यहाँ आती थीं । जल भरते समय कृष्ण का दर्शनकर ऐसी तन्मय हो जातीं कि मटकी ख़ाली है या जल से भरी है इसका भी उन्हें ध्यान नहीं रहता । किन्तु उनकी हृदयरूपी मटकी में प्रियतम अवश्य भर जाते । पनघट का एक निगुढ़ रहस्य यह भी है– गोपियाँ यहाँ कृष्ण का यह पन (प्रतिज्ञ) स्मरण करके आतीं कि 'मैं वहाँ तुमसे अवश्य ही मिलूँगा ' । कृष्ण उस पन को निभाने के लिए वहाँ उनकी प्रतीक्षा करते हुए निश्चित रूप में मिलते । अत: कृष्ण और गोपियाँ दोनों का पन यहाँ पूरा होता है, इसलिए इसके पनघट कहते हैं । नन्दगाँव के पश्चिम में चरणपहाड़ी स्थित है ।

महावन

मथुरा नाथ श्री द्वारिका नाथ,

महावन चौरासी खम्भा, महावन

ज़िला मथुरा, उ0प्र0 में मथुरा के समीप, यमुना के दूसरे तट पर स्थित अति प्राचीन स्थान है जिसे बालकृष्ण की क्रीड़ास्थली माना जाता है। यहाँ अनेक छोटे-छोटे मंदिर हैं जो अधिक पुराने नहीं हैं। समस्त वनों से आयतन में बड़ा होने के कारण इसे बृहद्वन भी कहा गया है। इसकों महावन, गोकुल या वृहद्वन भी कहते हैं। गोलोक से यह गोकुल अभिन्न है।* व्रज के चौरासी वनों में महावन मुख्य था।

इतिहास से

महावन मथुरा-सादाबाद सड़क पर मथुरा से 11 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। यह एक प्राचीन स्थान है। महावन नाम ही इस बात का द्योतक है कि यहाँ पर पहले सघन वन था। मुग़ल काल में सन 1634 ई॰ में सम्राट शाहजहाँ ने इसी वन में चार शेरों का शिकार किया था। सन 1018 ई॰ में महमूद ग़ज़नवी ने महावन पर आक्रमण कर इसको नष्ट भ्रष्ट किया था। इस दुर्घटना के उपरान्त यह अपने पुराने वैभव को प्राप्त नहीं कर सका।

- मिनहाज नामक इतिहासकार ने इस स्थान को शाही सेना के ठहरने का स्थान बताया है।
- सन 1234 ई॰ में सुल्तान अल्तमश ने कालिन्जर की ओर जो सेना भेजी थी वह यहाँ ठहरी थी।
- सन 1526 ई॰ में बाबर ने भी इस स्थान के महत्व को स्वीकार किया था।
- अकबर के शासनकाल में यह आगरा सरकार के अन्तर्गत 33 महलों में से एक महल था।
- सन 1803 ई॰ में यह अलीगढ़ ज़िले का एक भाग था।
- सन 1832 ई॰ में यह फिर मथुरा ज़िले में मिला दिया गया। अँग्रेजी शासन में यहाँ तहसील थी।
- सन 1910 ई॰ में तहसील मथुरा को स्थानान्तरित कर दी गई।
- बौद्धकाल में भी एक महत्व की जगह रही होगी। फ़ाह्यान नामक चीनी यात्री ने जिन मठों का वर्णन लिखा है उनमें से कुछ मठ यहाँ भी रहे होंगे क्योंकि उसने लिखा है कि यमुना नदी के दोनों ओर बौद्ध मठ बने हुए थे। बहुत से इतिहासकारों द्वारा यह नगर एरियन और प्लिनी द्वारा वर्णित मेथोरा और क्लीसोबोरा है।
- महावन में प्राचीन दुर्ग की ऊँची भूमि अब भी देखने को मिलती है जिससे ज्ञात होता है कि यह कुछ तो प्राकृतिक और कुछ कृत्रिम था इस दुर्ग के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसको मेवाड़ के राजा कतीरा ने निर्मित किया था। परम्परागत अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि राणा मुसलमानों के आक्रमण से मेवाड़ छोड़कर महावन चले आये थे और उन्होंने दिगपाल नामक महावन के राजा के यहाँ आश्रय लिया था। राणा के पुत्र कान्तकुँअर का विवाह दिगपाल की पुत्री के साथ हुआ था और फिर अपने श्वसुर के राज्य का ही वह अन्त में उत्तराधिकारी हुआ। कान्तकुँअर ने अपने पारवारिक पुरोहितों को सम्पूर्ण महावन का पुरोहितत्व प्रदान किया। ये ब्राह्मण सनाढ्य थे। आज भी उन ब्राह्मणों के वंशज चौधरी उपाधि ग्रहण करते हैं और अब भी थोक चौधरीयान के नाम से ये प्रसिद्ध है।
- आचार्य श्री कैलाशचन्द्र 'कृष्ण' के 'महावन और रमणरेती' लेख के अनुसार कस्बे में एक स्थान पर ब्रिटिश शासनकाल का शिलालेख है। जिसके द्वारा महावन तथा उसके आसपास में आखेट करना निषिद्ध है। मुग़ल शासक अकबर महान, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि शासकों ने भी पुष्टि सम्प्रदाय के गोस्वामियों से प्रभावित होकर इस क्षेत्र में पशु-वध की निषेधाज्ञाएँ प्रसारित की थी।
- चौरासी खम्भा मन्दिर से पूर्व दिशा में कुछ ही दूर यमुना जी के तट पर ब्रह्मांड घाट नाम का रमणीक स्थल है। यहाँ बहुत सुन्दर पक्के घाट हैं। चारों ओर सुरम्य वृक्षावली, उद्यान एवं एक संस्कृत पाठशाला है। धार्मिक मान्यता के अनुकूल यहाँ श्रीकृष्ण ने मिट्टी खाने के बहाने यशोदा को अपने मुख में समग्र ब्राह्मांड के दर्शन कराये थे। यहीं से कुछ दूर लतवेष्टित स्थल में मनोहारी चिन्ताहरण शिव दर्शन हैं।
- ब्रिटिश काल में महावन तहसील बन जाने से इस नगर की कुछ उन्नति हुई लेकिन प्राचीन वैभव को यह प्राप्त नहीं कर सका।
- महावन को औरंगज़ेब के समय में उसकी धर्मांध नीति का शिकार बनना पड़ा था। इसके बाद 1757 ई॰ में अफ़ग़ान अहमदशाह अब्दाली ने जब मथुरा पर आक्रमण किया तो उसने महावन में सेना का शिविर बनाया। वह यहाँ ठहर कर गोकुल को नष्ट करना चाहता था। किंतु महावन के चार हज़ार नागा सन्यासियों ने उसकी सेना के 2000 सिपाहियों को मार डाला और स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए। गोकुल पर होने वाले आक्रमण का इस प्रकार निराकरण हुआ और अब्दाली ने अपनी फ़ौज वापस बुला ली। इसके पश्चात महावन के शिविर में विशूचिका (हैजा) के प्रकोप से अब्दाली के अनेक सिपाही मर गए। अत: वह शीघ्र दिल्ली लौट गया किंतु जाते-जाते भी इस बर्बर आक्रांता ने मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों पर जो लूट मचाई और लोमहर्षक विध्वंस और रक्तपात किया वह इसके पूर्व कृत्यों के अनुकूल ही था।

पुरानी गोकुल

महावन गोकुल से आगे 2 किमी. दूर है। लोग इसे पुरानी गोकुल भी कहते हैं। गोपराज नन्द बाबा के पिता पर्जन्य गोप पहले नन्दगाँव में ही रहते थे। वहीं रहते समय उनके उपानन्द, अभिनन्द, श्रीनन्द, सुनन्द, और नन्दन-ये पाँच पुत्र तथा सनन्दा और नन्दिनी दो कन्याएँ पैदा हुईं। उन्होंने वहीं रहकर अपने सभी पुत्र और कन्याओं का विवाह दिया। मध्यम पुत्र श्रीनन्द को कोई सन्तान न होने से बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने अपने पुत्र नन्द को सन्तान की प्राप्ति के लिए नारायण की उपासना की और उन्हें आकाशवाणी से यह ज्ञात हुआ कि श्रीनन्द को असुरों का दलन करने वाला महापराक्रमी सर्वगुण सम्पन्न एक पुत्र शीघ्र ही पैदा होगा। इसके कुछ ही दिनों बाद केशी आदि असुरों का उत्पात आरम्भ होने लगा। पर्जन्य गोप पूरे परिवार और सगे सम्बन्धियों के साथ इस बृहद्वन में उपस्थित हुए। इस बृहद् या महावन में निकट ही यमुना नदी बहती है। यह वन नाना प्रकार के वृक्षों, लता-वल्लरियों और पुष्पों से सुशोभित है, जहाँ गऊओं के चराने के लिए हरे-भरे चारागाह हैं। ऐसे एक स्थान को देखकर सभी गोप ब्रजवासी बड़े प्रसन्न हुए तथा यहीं पर बड़े सुखपूर्वक निवास करने लगे। यहीं पर नन्दभवन में यशोदा मैया ने कृष्ण कन्हैया तथा योगमाया को यमज सन्तान के रूप में अर्द्धरात्रि को प्रसव किया। यहीं यशोदा के सूतिकागार में नाड़ीच्छेदन आदि जातकर्म रूप वैदिक संस्कार हुए। यहीं पूतना, तृणावर्त, शकटासुर नामक असुरों का वध कर कृष्ण ने उनका उद्धार किया। पास ही नन्द की गोशाला में कृष्ण और बलदेव का नामकरण हुआ। यहीं पास में ही घुटनों पर राम कृष्ण चले, यहीं पर मैया यशोदा ने चंचल बाल कृष्ण को ओखल से बाँधा, कृष्ण ने यमलार्जुन का उद्धार किया। यहीं ढाई-तीन वर्ष की अवस्था तक की कृष्ण और राम की बालक्रीड़ाएँ हुईं। वृहद्वन या महावन गोकुल की लीलास्थलियों का ब्रह्माण्ड पुराण में भी वर्णन किया गया है।

वर्तमान दर्शनीय स्थल

मथुरा से लगभग छह मील पूर्व मं महावन विराजमान है। ब्रजभक्ति विलास के अनुसार महावन में श्रीनन्दमन्दिर, यशोदा शयनस्थल, ओखलस्थल, शकटभजंनस्थान, यमलार्जुन उद्धारस्थल, सप्तसामुद्रिक कूप, पास ही गोपीश्वर महादेव, योगमाया जन्मस्थल, बाल गोकुलेश्वर, रोहिणी मन्दिर, पूतना बधस्थल दर्शनीय हैं। भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार यहाँ के दर्शनीय स्थल हैं- जन्म स्थान, जन्म-संस्कार स्थान, गोशाला, नामकरण स्थान, पूतना वधस्थान, अग्निसंस्कार स्थल, शकटभजंन स्थल, स्तन्यपान स्थल, घुटनों पर चलने का स्थान, तृणावर्त वधस्थल, ब्रह्माण्ड घाट, यशोदा जी का आंगन, नवनीत चोरी स्थल, दामोदर लीला स्थल, यमलार्जुन-उद्धार-स्थल, गोपीश्वर महादेव, सप्तसामुद्रिक कूप, श्रीसनातन गोस्वामी की भजनस्थली, मदनमोहनजी का स्थान, रमणरेती, गोपकूप, उपानन्द आदि गोपों के वासस्थान, श्रीकृष्ण के जातकर्म आदि का स्थान, गोप-बैठक, वृन्दावन गमनपथ, सकरौली आदि।

दन्तधावन टीला

यहाँ नन्द महाराज जी बैठकर दातुन के द्वारा अपने दाँतों को साफ करते थे।

नन्दबाबा की हवेली

दन्त धावन टीला के नीचे और आसपास नन्द और उनके भाईयों की हवेलियाँ तथा सगे-संबन्धी गोप, गोपियों की हवेलियाँ थीं। आज उनका भग्नावशेष दूर-दूर तक देखा जाता है।

राधादामोदर मंदिर

मथुरा से 18 कि0 मी0 दूर **महावन** में यमुना के बांये तट पर स्थित यह प्रसिद्ध मन्दिर तत्कालीन बोध कला एवं स्थापत्य का दिग्दर्शक है। इसमें अस्सी खम्भा मुख्य दर्शनीय हैं।

नन्दभवन

नन्द हवेली के भीतर ही श्री यशोदा मैया के कक्ष में भादों माह के रोहिणी नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथि को अर्द्धरात्रि के समय स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण और योगमाया ने यमज सन्तान के रूप में माँ यशोदा जी के गर्भ से जन्म लिया था। यहाँ योगमाया का दर्शन है। श्रीमद्भागवत में भी इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है कि महाभाग्यवान नन्दबाबा भी पुत्र के उत्पन्न होने से बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने नाड़ीछेद-संस्कार, स्नान आदि के पश्चात ब्राह्मणों को बुलाकर जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न कराया।* श्रीरघुपति उपाध्यायजी कहते हैं कि संसार में जन्म-मरण के भय से भीत कोई श्रुतियों का आश्रय लेते हैं तो कोई स्मृतियों का और कोई महाभारत का ही सेवन करते हैं तो करें, परन्तु मैं तो उन श्रीनन्दराय जी की वन्दना करता हूँ कि जिनके आंगन में परब्रह्म बालक बनकर खेल रहा है।

पूतना उद्धार स्थल

माता का वेश बनाकर पूतना अपने स्तनों में कालकूट विष भरकर नन्दभवन में इस स्थल पर आयी। उसने सहज ही यशोदा-रोहिणी के सामने ही पलने पर सोये हुए शिशु कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया और स्तनपान कराने लगी। कृष्ण ने कालकूट विष के साथ ही साथ उसके प्राणों

को भी चूसकर राक्षसी शरीर से उसे मुक्तकर गोलोक में धात के समान गति प्रदान की। पूतना पूर्वजन्म में महाराज बलि की कन्या रत्नमाला थी। भगवान वामनदेव को अपने पिता के राजभवन में देखकर वैसे ही सुन्दर पुत्र की कामना की थी। किन्तु जब वामनदेव ने बलि महाराज का सर्वस्व हरण कर उन्है नागपाश में बाँध दिया तो वह रोने लगी। उस समय वह यह सोचने लगी कि ऐसे क्रूर बेटे को मैं विषमिश्रित स्तन-पान कराकर मार डालूँगी। वामनदेव ने उसकी अभिलाषाओं को जानकर 'एवम् अस्तु' ऐसा ही हो वरदान दिया था। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उसी रूप में उसका वध कर उसको धात्रोचित गति प्रदान की।

शकटभंजन स्थल

एक समय बाल-कृष्ण किसी छकड़े के नीचे पलने में सो रहे थे। यशोदा मैया उनके जन्मनक्षत्र उत्सव के लिए व्यस्त थीं। उसी समय कंस द्वारा प्रेरित एक असुर उस छकड़े में प्रविष्ट हो गया और उस छकड़े को इस प्रकार से दबाने लगा जिससे कृष्ण उस छकड़े के नीचे दबकर मर जाएँ। किन्तु चंचल बालकृष्ण ने किलकारी मारते हुए अपने एक पैर की ठोकर से सहज रूप में ही उसका वध कर दिया। छकड़ा उलट गया और उसके ऊपर रखे हुए दूध, दही, मक्खन आदि के बर्तन चकनाचूर हो गये। बच्चे का रोदन सुनकर यशोदा मैया दौड़ी हुई वहाँ पहुँची और आश्चर्यचकित हो गई। बच्चे को सकुशल देखकर ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत सी गऊओं का दान किया। वैदिक रक्षा के मन्त्रों का उच्चारणपूर्वक ब्राह्मणों ने काली गाय के मूत्र और गोबर से कृष्ण का अभिषेक किया। यह स्थान इस लीला को संजोये हुए आज भी वर्तमान है। शकटासुर पूर्व जन्म में हिरण्याक्ष दैत्य का पुत्र उत्कच नामक दैत्य था। उसने एक बार लोमशऋषि के आश्रम के हरे-भरे वृक्षों और लताओं को कुचलकर नष्ट कर दिया था। ऋषि ने क्रोध से भरकर श्राप दिया- 'दुष्ट तुम देह-रहित हो जाओ।' यह सुनकर वह ऋषि के चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगा।' उसी असुर ने छकड़े में आविष्ट होकर कृष्ण को पीस डालना चाहा, किन्तु भगवान कृष्ण के श्रीचरणकमलों के स्पर्श से मुक्त हो गया। श्रीमद्भागवत में इसका वर्णन है।

तृणावर्त वधस्थल

एक समय कंस ने कृष्ण को मारने के लिए गोकुल में तृणावर्त नामक दैत्य को भेजा। वह कंस की प्रेरणा से बवण्डर का रूप धारण कर गोकुल में आया और यशोदा के पास ही बैठे हुए कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया। बालकृष्ण ने स्वाभाविक रूप में उसका गला पकड़ा लिया, जिससे उसका गला रूद्ध हो गया, आँखें बाहर निकल आईं और वह पृथ्वी पर गिर कर मर गया।

दधिमन्थन स्थल

यहाँ यशोदा जी दधि मन्थन करती थीं। एक समय बाल कृष्ण निशा के अंतिम भाग में पलंग पर सो रहे थे। यशोदा मैया ने पहले दिन शाम को दीपावली के उपलक्ष्य में दास, दासियों को उनके घरों में भेज दिया था। सवेरे स्वयं कृष्ण को मीठा मक्खन खिलाने के लिए दक्षिमन्थन कर रही थीं तथा ऊँचे स्वर एवं ताल-लय से कृष्ण की लीलाओं का आविष्ट होकर गायन भी कर रही थीं। उधर भूख लगने पर कृष्ण मैया को खोजने लगे। पलगं से उतरकर बड़े कष्ट से ढुलते-ढुलते रोदन करते हुए किसी प्रकार माँ के पास पहँचे। यशोदा जी बड़े प्यार से पुत्र को गोदी में बिठाकर स्तनपान कराने लगीं। इसी बीच पास ही आग के ऊपर रखा हुआ दूध उफनने लगा। मैया ने अतृप्त कृष्ण को बलपूर्वक अपनी गोदी से नीचे बैठा दिया और दूध की रक्षा के लिए चली गईं। अतृप्त बाल कृष्ण के अधर क्रोध से फड़कने लगे और उन्होंने लोढ़े से मटके में छेद कर दिया। तरल दधि मटके से चारों ओर बह गया। कृष्ण उसी में चलकर घर के अन्दर उलटे ओखल पर चढ़कर छींके से मक्खन निकालकर कुछ स्वयं खाने लगे और कुछ बंदरों तथा कौवों को भी खिलाने लगे। यशोदा जी लौटकर बच्चे की करतूत देखकर हँसने लगीं और उन्होंने छिपकर घर के अन्दर कृष्ण को पकड़ना चाहा। मैया को देखकर कृष्ण ओखल से कूदकर भागे, किन्तु यशोदाजी ने पीछे से उनकी अपेक्षा अधिक वेग से दौड़कर उन्हें पकड़ लिया, दण्ड देने के लिए ओखल से बाँध दिया। [4] फिर गृहकार्य में लग गयीं। इधर कृष्ण ने सखाओं के साथ ओखल को खींचते हुए पूर्व जन्म के श्रापग्रस्त कुबेर पुत्रों को स्पर्श कर उनका उद्धार कर दिया। यहीं पर नन्दभवन में यशोदा जी ने कृष्ण को ओखल से बाँधा था। नन्दभवन से बाहर पास ही नलकुबेर वर मणिग्रीव के उद्धार का स्थान है। आजकल जहाँ चौरासी खम्बा हैं, वहाँ कृष्ण का नाड़ीछेदन हुआ था। उसी के पास में नन्दकूप है।

नन्दबाबा की गोशाला

गोशाला में कृष्ण और बलदेव का नामकरण हुआ था। गर्गाचार्य जी ने इस निर्जन गोशाला में कृष्ण और बलदेव का नामकरण किया था। नामकरण के समय श्रीबलराम और कृष्ण के अद्भुत पराक्रम, दैत्यदलन एवं भागवतोचित लीलाओं के संबन्ध में भविष्यवाणी भी की थीं। कंस के अत्याचारों के भय से नन्द महाराज ने बिना किसी उत्सव के नामकरण संस्कार कराया था।

मल्ल तीर्थ

यहाँ नंगे बाल कृष्ण और बलराम परस्पर मल्ल युद्ध करते थें। गोपियाँ लड्डू का लोभ दिखालाकर उनको मल्लयुद्ध की प्रेरणा देतीं तथा युद्ध के लिए उकसातीं। ये दोनों बालक एक दूसरे को पराजित करने की लालसा से मल्ल युद्ध करते थे। यहाँ पर वर्तमान समय में गोपीश्वर महादेव विराजमान हैं।

नन्दकूप

महाराज नन्द जी इस कुएँ का जल व्यवहार करते थे। इसका नामान्तर सप्तसामुद्रिक कूप भी है। ऐसा कहा जाता है कि देवताओं ने भगवान श्रीकृष्णकी सेवा के लिए इसे प्रकट किया था। इसका पानी शीतकाल में उष्ण तथा उष्णकाल में शीतल रहता था। इसमें स्नान करने से समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है।

महावन में श्रीचैतन्य महाप्रभु

श्री रूप सनातन के ब्रज आगमन से पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु वन भ्रमण के समय यहाँ पधारे थे। वे महावन में कृष्ण जन्मस्थान में श्रीमदनमोहन जी का दर्शनकर प्रेम में विह्वल होकर नृत्य करने लगे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

श्रीसनातन गोस्वामी का भजनस्थल

चौरासी खम्बा मन्दिर से नीचे उतरने पर सामुद्रिक कूप के पास ही गुफ़ा के भीतर सनातन गोस्वामी की भजनकुटी है। सनातन गोस्वामी कभी-कभी यहाँ गोकुल में आने पर इसी जगह भजन करते थे और श्रीमदनगोपालजी का प्रतिदिन दर्शन करते थें।* एक समय सनातन गोस्वामी यमुना पुलिन के रमणीय बालू में एक अद्भुत बालक को खेलते हुए देखकर आश्चर्यचकित हो गये। खेल समाप्त होने पर वे बालक के पीछे-पीछे चले, किन्तु मन्दिर में प्रवेश ही वह बालक दिखाई नहीं दिया, विग्रह के रूप में श्रीमदनगोपाल दीखे। वही श्रीमदनगोपाल कुछ समय बाद पुन: मथुरा के चौबाइन के घर में उसके बालक के साथ में खेलते हुए मिले। श्रीमदनगोपाल ने सनातनजी से उनके साथ वृन्दावन में ले चलने लिए आग्रह किया। सनातन गोस्वामी उनको अपनी भजनकुटी में ले आये और विशाल मन्दिर बनवा कर उनकी सेवा-पूजा आरम्भ करवाई। जन्मस्थली नन्दभवन से प्राय: एक मील पूर्व में ब्रह्माण्ड घाट विराजमान है।

कोलेघाट

ब्रह्माण्ड घाट से यमुना पार मथुरा की ओर कोलेघाट विराजमान है। श्री वसुदेव जी नवजात कृष्ण को लेकर यहीं से यमुना पार होकर गोकुल नन्दभवन में पहुँचे थे। जिस समय वसुदेव जी यमुना पार करते समय बीच में उपस्थित हुए, उस समय यमुना श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श करने के लिए बढ़ने लगी। वसुदेव जी कृष्ण को ऊपर उठाने लगे। जब वसुदेव जी के गले तक पानी पहुँचा तो वे बालक की रक्षा करने की चिन्ता से घबड़ाकर कहने लगे इसे 'को लेवे' अर्थात इसे कौन लेकर बचाये। इसलिए वज्रनाभ जी ने यमुना के इस घाट का नाम कोलेघाट रखा। यमुना के स्तर को बढ़ते देखकर बालकृष्ण ने पीछे से अपने पैरों को यमुना जी के कोल में (गोदी में) स्पर्श करा दिया। यमुना जी कृष्ण के चरणों का स्पर्श पाकर झट नीचे उतर गईं। पीछे से वहाँ टापू हो गया और वहाँ कोलेगाँव बस गया। कोले घाट के तटपर उथलेश्वर और पाण्डेश्वर महादेवजी के दर्शन हैं। दाऊजी से पांच कोस उत्तर की तरफ देवस्पति गोपका निवास स्थान देवनगर है। वहाँ रामसागरकुण्ड, प्राचीन बृहद कदम्ब वृक्ष और देवस्पति गोप के पूजन की गोवर्धन शिला दर्शनीय है। दाऊजी के पास ही हातौरा ग्राम हैं वहाँ नन्दरायजी की बैठक है।

कर्णछेदन स्थान

यहाँ बालकृष्ण और बलराम का कर्णछेदन संस्कार हुआ था। इसका वर्तमान नाम कर्णावल गाँव है। यहाँ कर्णबेध कूप, रत्नचौक और श्रीमदनमोहन तथा माधवरायजी के श्रीविग्रहों के दर्शन हैं।

गोकुल

यमुना, गोकुल घाट

यह स्थल मथुरा से 15 किमी की दूरी पर यमुना के पार स्थित है। यह वैष्णव तीर्थ है। यथार्थ महावन और गोकुल एक ही है। नन्द बाबा अपने परिजनों को लेकर नन्दगाँव से वृहद्वन या महावन में बस गये। गो, गोप, गोपी आदि का समूह वास करने के कारण महावन को ही गोकुल कहा गया है। नन्दबाबा के समय गोकुल नाम का कोई पृथक् रूप में गाँव या नगर नहीं था। यथार्थ में यह गोकुल आधुनिक बस्ती है। यहाँ पर नन्दबाबा की गऊओं का खिड़क था। आज से लगभग पाँच सौ पच्चीस वर्ष पहले श्री चैतन्य महाप्रभु के ब्रज आगमन के पश्चात श्री वल्लभाचार्य ने यमुना के इस मनोहर तट पर श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। इनके पुत्र श्री विट्ठलाचार्य और उनके पुत्र श्रीगोकुलनाथजी की बैठकें भी यहाँ पर है। असल में श्रीविट्ठलनाथ जी ने औरंगजेब को चमत्कार दिखला कर इस स्थान का अपने नाम पर पट्टा लिया था। उन्होंने ही इस गोकुल को बसाया। उनके पश्चात श्रीगोकुलनाथ के पुत्र, परिवारों के सहित इस गोकुल में ही रहते थे। श्रीवल्लभकुल के गोस्वामी गोकुल में ही रहते थे। उन्होंने यहाँ पर मथुरेशजी, विट्ठलनाथ जी, द्वारिकाधीश जी, गोकुलचन्द्रमा जी, बालकृष्ण जी तथा श्रीमदनमोहन जी के श्रीविग्रहों को प्रतिष्ठा की थी। बाद में श्रीमथुरेश जी कोटा, श्रीविट्ठलनाथ जी नाथद्वारा, श्रीद्वारिकाधीश जी कांकरौली, गोकुलचन्द्रमा जी कामवन, श्रीबालकृष्ण जी सूरत और मदनमोहन जी कामवन पधार गये। श्रीवल्लभकुल के गोस्वामी गोकुल में रहने के कारण गोकुलिया गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। विश्वास किया जाता है कि भगवान कृष्ण ने यहाँ गौएँ चरायी थीं। कहा जाता है, श्री कृष्ण के पालक पिता नन्द जी का यहाँ गोष्ठ था। संप्रति वल्लभाचार्य, उनके पुत्र गुसाँई बिट्ठलनाथ जी एवं गोकुलनाथजी को बैठकें है। मुख्य मन्दिर गोकुलनाथ जी का है। यहाँ वल्लभकुल के चौबीस मन्दिर बतलाये जाते हैं। महालिंगेश्वर तन्त्र में शिवशतनाम स्तोत्र के अनुसार महादेव गोपीश्वर का यह स्थान है:
गोकुले गोपिनीपूज्यो गोपीश्वर इतीरितः।
यह ब्रज का बहुत महत्वपूर्ण स्थल है। यहीं पर रोहिणी ने बलराम को जन्म दिया था। बलराम देवकी के सातवें गर्भ में थे जिन्हें योगमाया ने आकर्षित करके रोहिणी के गर्भ में डाल दिया था। मथुरा में कृष्ण के जन्म के बाद कंस के सभी सैनिकों को नींद आ गयी और वासुदेव की बेड़ियाँ खुल गयी थीं। तब वासुदेव कृष्ण को गोकुल में नन्दराय के यहाँ छोड़ आये थे। नन्दराय जी के घर लाला का जन्म हुआ है, धीरे-धीरे यह बात गोकुल में फैल गयी। सभी गोपगण, गोपियाँ, गोकुलवासी खुशियाँ मनाने लगे। सभी घर, गलियाँ चौक आदि सजाये जाने लगे और बधाइयाँ गायी जाने लगीं। कृष्ण और बलराम का पालन पोषण यही हुआ और दोनों अपनी लीलाओं से सभी का मन मोहते रहे। घुटनों के बल चलते हुए दोनों भाई को देखना गोकुल वासियों को सुख देता था, वहीं माखन चुराकर कृष्ण ब्रज की गोपिकाओं के दुखों को हर लेते थे। गोपियाँ कृष्ण जी को छाछ और माखन का लालच देकर नचाती थीं तो कृष्ण जी बांसुरी की धुन से सभी को मन्त्र मुग्ध कर देते थे। कृष्ण ने गोकुल में रहते हुए पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदि असुरों को मोक्ष प्रदान किया। गोकुल से आगे 2 किमी. दूर महावन है। लोग इसे पुरानी गोकुल कहते हैं। यहाँ चौरासी खम्भों का मन्दिर, नन्देश्वर महादेव, मथुरा नाथ, द्वारिका नाथ आदि मन्दिर हैं।

नवनीतप्रिया जी का मन्दिर

- नवनीतप्रिया जी का यह प्राचीन मन्दिर गोकुल, मथुरा में स्थित है ।

नवनीतप्रिया जी का मन्दिर,गोकुल

श्रीठाकुरानीघाट

गोकुल का यह मुख्य घाट है। श्रीवल्लभाचार्य जी को यहीं पर श्रीयमुना महारानी का दर्शन प्राप्त हुआ थां उन्होंने यहीं पर सर्वप्रथम दीक्षा देना आरम्भ किया। इसलिए वल्लभ संप्रदाय के वैष्णवों के लिए यह घाट बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

गोविन्द घाट

श्रीवल्लभाचार्यजी जब ब्रज में आये, तब यमुना के इस घाट का दर्शन कर बड़े आकर्षित हुए। उन्होंने बड़े-बूढ़े ब्रजवासियों से सुना कि पास ही नन्दबाबा की खिड़क थी और यह घाट जहाँ वह बैठे हैं, वह घाट गोविन्द घाट के नाम से विख्यात है। श्रीवल्लभाचार्यजी उस स्थान का दर्शन कर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इस घाट पर शमीवृक्ष के नीचे श्रीमद्भागवत का सप्ताह-पारायण किया।

इसके अतिरिक्त यहाँ- गोकुलनाथजी का बाग, बाजनटीला, सिंहपौड़ी, यशोदाघाट, श्रीविट्ठलनाथ जी का मन्दिर, श्रीमदनमोहन जी का मन्दिर, श्रीमाधवराय जी का मन्दिर, श्रीगोकुलनाथ जी का मन्दिर, श्रीनवनीतप्रिया जी का मन्दिर, श्रीद्वारकानाथजी का मन्दिर, ब्रह्मछोकरा वृक्ष, श्रीगोकुलचन्द्रमाजी का मन्दिर, श्रीमथुरानाथजी का मन्दिर तथा श्रीनन्दमहाराज जी के छकड़ा रखने आदि स्थान दर्शनीय हैं। गोकुल के सामने यमुना के उसपार नौरंगाबाद गाँव है। उसमें श्रीगंगा जी का मन्दिर तथा दूसरे दर्शनीय स्थान हैं।

बलदेव

दाऊजी मन्दिर, क्षीर सागर,

स्थिति

यह स्थान मथुरा जनपद में ब्रजमंडल के पूर्वी छोर पर स्थित है। मथुरा से 21 कि॰मी॰ दूरी पर एटा-मथुरा मार्ग के मध्य में स्थित है। मार्ग के बीच में गोकुल एवं महावन जो कि पुराणों में वर्णित 'वृहद्वन' के नाम से विख्यात है, पड़ते हैं। यह स्थान पुराणोक्त 'विद्रुमवन' के नाम से निर्दिष्ट है। इसी विद्रुभवन में भगवान श्री बलराम जी की अत्यन्त मनोहारी विशाल प्रतिमा तथा उनकी सहधर्मिणी राजा ककु की पुत्री ज्योतिष्मती रेवती जी का विग्रह है। यह एक विशालकाय देवालय है जो कि एक दुर्ग की भाँति सुदृढ प्राचीरों से आवेष्ठित है। मन्दिर के चारों ओर सर्प की कुण्डली की भाँति परिक्रमा मार्ग में एक पूर्ण पल्लवित बाज़ार है। इस मन्दिर के चार मुख्य दरवाजे हैं, जो क्रमश:

1. सिंहचौर,
2. जनानी ड्योढी,
3. गोशाला द्वार,
4. बड़वाले दरवाज़े के नाम से जाने जाते हैं।

मन्दिर के पीछे एक विशाल कुण्ड है जो कि बलभद्र कुण्ड के नाम से पुराण में वर्णित है। आजकल इसे 'क्षीरसागर' के नाम से पुकारते हैं।

ऐतिहासिक तथ्य

मगधराज जरासंध के राज्य की पश्चिमी सीमा यहाँ लगती थीं, अत: यह क्षेत्र कंस के आतंक से प्राय: सुरक्षित था। इसी निमित्त नन्द बाबा ने बलदेव जी की माता रोहिणी को बलदेव जी के प्रसव के निमित इसी विद्रुमवन में रखा था और यहीं बलदेव जी का जन्म हुआ जिसके प्रतीक रूप रीढ़ा (रोहिणेयक ग्राम का अपभ्रंश तथा अबैरनी, बैर रहित क्षेत्र) दोनों ग्राम आज तक मौजूद हैं।

मुग़लकाल में

धीरे-धीरे समय बीत गया बलदेव जी की ख्याति एवं वैभव निरन्तर बढ़ता गया और समय आ गया धर्माद्वेषी शंहशाह औरंगज़ेब का। जिसका मात्र संकल्प समस्त हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्ति भंजन एवं देव स्थान को नष्ट-भ्रष्ट करना था। मथुरा के केशवदेव मन्दिर एवं महावन के प्राचीनतम देव स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करता आगे बढा तो उसने बलदेव जी की ख्याति सुनी व निश्चय किया कि क्यों न इस मूर्ति को तोड़ दिया जाय। फलत: मूर्ति भंजनी सेना को लेकर आगे बढ़ा। कहते हैं कि सेना निरन्तर चलती रही जहाँ भी पहुँचते बलदेव की दूरी पूछने पर दो कोस ही बताई जाती जिससे उसने समझा कि निश्चय ही बल्देव कोई चमत्कारी देव विग्रह है, किन्तु अधमोन्मार्द्ध सेना लेकर बढ़ता ही चला गया जिसके परिणाम-स्वरूप कहते हैं कि भौरों और ततइयों (बेर्रा) का एक भारी झुण्ड उसकी सेना पर टूट पडा जिससे सैकडों सैनिक एवं घोडे उनके देश के आहत होकर काल कवलित हो गये। औरंगजेब के अन्तर ने स्वीकार किया देवालय का प्रभाव और शाही फ़रमान ज़ारी किया जिसके द्वारा मंदिर को 5 गाँव की माफी एवं एक विशाल नक्कारखाना निर्मित कराकर प्रभु को भेंट किया एवं नक्कारखाना की व्यवस्था हेतु धन प्रतिवर्ष राजकोष से देने के आदेश प्रसारित किया। वहीं नक्कारखाना आज भी मौजूद है और यवन शासक की पराजय का मूक साक्षी है। इसी फरमान-नामे का नवीनीकरण उसके पौत्र शाह आलम ने सन् 1196 फसली की ख़रीफ़ में दो गाँव और बढ़ाकर यानी 7 गाँव कर दिया। जिनमें

खड़ेरा, छवरऊ, नूरपुर, अरतौनी, रीढ़ा आदि जिसको तत्कालीन क्षेत्रीय प्रशासक (वज़ीर) नज़फ खाँ बहादुर के हस्ताक्षर से शाही मुहर द्वारा प्रसारित किया गया तथा स्वयं शाह आलम ने एक पृथक से आदेश चैत सुदी 3 संवत 1840 को अपनी मुहर एवं हस्ताक्षर से जारी किया। शाह आलम के बाद इस क्षेत्र पर सिंधिया राजवंश का अधिकार हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण जागीर को यथास्थान रखा एवं पृथक से भोगराग माखन मिश्री एवं मंदिर के रख-रखाव के लिये राजकोष से धन देने की स्वीकृति दिनाँक भाद्रपद-वदी चौथ संवत 1845 को गोस्वामी कल्याण देवजी के पौत्र गोस्वामी हंसराजजी, जगन्नाथजी को दी। यह सारी जमींदारी आज भी मंदिर श्री दाऊ जी महाराज एवं उनके मालिक कल्याण वंशज, जो कि मंदिर के पण्डा पुरोहित कहलाते हैं, उनके अधिकार में है। मुग़ल काल में एक विशिष्ट मान्यता यह थी कि सम्पूर्ण महावन तहसील के समस्त गाँवों में से श्री दाऊजी महाराज के नाम से पृथक देव स्थान खाते की माल गुजारी शासन द्वारा वसूल कर मंदिर को भेंट की जाती थी, जो मुग़लकाल से आज तक शाही ग्रांट के नाम से जानी जाती हैं, सरकारी खजाने से आज तक भी मंदिर को प्रतिवर्ष भेंट की जाती है।

ब्रिटिश शासन

इसके बाद अंग्रेज़ों का जमाना आया। मन्दिर सदैव से देश-भक्तों के जमावड़े का केन्द्र रहा। उनकी सहायता एवं शरण-स्थल का एक मान्य-स्रोत भी। जब ब्रिटिश शासन को पता चला तो उन्होंने मन्दिर के मालिकान पण्डों को आगाह किया कि वे किसी भी स्वतन्त्रता प्रेमी को अपने यहाँ शरण न दें परन्तु आत्मीय सम्बन्ध एवं देश के स्वतन्त्रता प्रेमी मन्दिर के मालिकों ने यह हिदायत नहीं मानी, जिससे चिढ़-कर अंग्रेज़ शासकों ने मन्दिर के लिये जो जागीरें भूमि एवं व्यवस्थाएं पूर्व शाही परिवारों से प्रदत्त थी उन्हें दिनाँक 31 दिसम्बर सन 1841 को स्पेशल कमिश्नर के आदेश से कुर्की कर जब्त कर लिया गया और मन्दिर के ऊपर पहरा बिठा दिया जिससे कोई भी स्वतन्त्रता प्रेमी मन्दिर में न आ सके, परन्तु किले जैसे प्राचीरों से आवेष्ठित मन्दिर में किसी दर्शनार्थी को कैसे रोक लेते? अत: स्वतन्त्रता संग्रामी दर्शनार्थी के रूप में आते तथा मन्दिर में निर्बाध चलने वाले सदावर्त एवं भोजन व्यवस्था का आनन्द लेते ओर अपनी कार्य-विधि का संचालन करके पुन: अभीष्ट स्थान को चले जाते। अतः प्रयत्न करने के बाद भी गदर प्रेमियों को शासन न रोक पाया।

मान्यताएं

बलदेव एक ऐसा तीर्थ है जिसकी मान्यताएं हिन्दू धर्मावलम्बी करते आये हैं। धर्माचार्यों में श्रीमद वल्लभाचार्य जी के वंश की तो बात ही पृथक् है। निम्बार्क, माध्व, गौड़ीय, रामानुज, शंकर कार्ष्णि, उदासीन आदि समस्त धर्माचार्यो, में बलदेव जी की मान्यताएं हैं। सभी नियमित रूप से बलदेव जी के दशनार्थ पधारते रहे हैं और यह क्रम आज भी जारी है।

ग्राउस के अनुसार

इसके साथ ही एक धक्का ब्रिटिश राज में मंदिर को तब लगा जब एफ॰ एस॰ ग्राउस यहाँ का कलेक्टर नियुक्त हुआ। ग्राउस महोदय का विचार था कि बलदेव जैसे प्रभावशाली स्थान पर एक चर्च का निर्माण कराया जाय क्योंकि बलदेव उस समय एक मूर्धन्य तीर्थ स्थल था। अत: उसने मंदिर की बिना आज्ञा के चर्च निर्माण प्रारम्भ कर दिया। शाही जमाने से ही मंदिर की 256 एकड़ भूमि में मंदिर की आज्ञा के बगैर कोई व्यक्ति किसी प्रकार का निर्माण नहीं करा सकता था। क्योंकि उपर्युक्त भूमि के मालिक जमींदार श्री दाऊजी हैं। तो उनकी आज्ञा के बिना कोई निर्माण कैसे हो सकता था? परन्तु उन्मादी ग्राउस महोदय ने बिना कोई परवाह किये निर्माण कराना शुरू कर दिया। मंदिर के मालिकान ने उसको बलपूर्वक ध्वस्त करा दिया जिससे चिढ़-कर ग्राउस ने पंडा वर्ग एवं अन्य निवासियों को भारी आतंकित किया। आगरा के एक मूर्धन्य सेठ एवं महाराज मुरसान के व्यक्तिगत प्रभाव का प्रयोग कर वायसराय से भेंट कर ग्राउस का स्थानान्तरण बुलन्दशहर कराया। जिस स्थान पर चर्च का निर्माण कराने की ग्राउस की हठ थीं। उसी स्थान पर आज वहाँ 'बेसिक प्राइमरी पाठशाला' है जो पश्चिमी स्कूल के नाम से जानी जाती है। ग्राउस की पराजय का मूक साक्षी है।

काम्यवन

चन्द्रमा जी मन्दिर, काम्यवन

- ब्रजमण्डल के द्वादशवनों में चतुर्थवन काम्यवन हैं। यह ब्रजमण्डल के सर्वोत्तम वनों में से एक हैं। इस वन की परिक्रमा करने वाला सौभाग्यवान व्यक्ति ब्रजधाम में पूजनीय होता है।*
- हे महाराज ! तदनन्तर काम्यवन है, जहाँ आपने (श्रीब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ने) बहुत सी बालक्रीड़ाएँ की थीं । इस वन के कामादि सरोवरों में स्नान करने मात्र से सब प्रकार की कामनाएँ यहाँ तक कि कृष्ण की प्रेममयी सेवा की कामना भी पूर्ण हो जाती है ।[1]
- यथार्थ में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम ही 'काम' शब्द वाच्य है । 'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यागमत प्रथाम्', अर्थात गोपिकाओं का निर्मल प्रेम जो केवल श्रीकृष्ण को सुख देने वाला होता है, जिसमें लौकिक काम की कोई गन्ध नहीं होती, उसी को शास्त्रों में काम कहा गया है । सांसारिक काम वासनाओं से गोपियों का यह शुद्ध काम सर्वथा भिन्न है । सब प्रकार की लौकिक कामनाओं से रहित केवल प्रेमास्पद कृष्ण को सुखी करना ही गोपियों के काम का एकमात्र तात्पर्य है । इसीलिए गोपियों के विशुद्ध प्रेम को ही श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों में काम की संज्ञा दी गई है । जिस कृष्णलीला स्थली में श्रीराधाकृष्ण युगल के ऐसे अप्राकृत प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, उसका नाम कामवन है। गोपियों के विशुद्ध प्रेमस्वरूप शुद्धकाम की भी सहज ही सिद्धि होती है, उसे कामवन कहा गया है।
- काम्य शब्द का अर्थ अत्यन्त सुन्दर, सुशोभित या रूचिर भी होता है । ब्रजमंडल का यह वन विविध–प्रकार के सुरम्य सरोवरों, कूपों, कुण्डों, वृक्ष–वल्लरियों, फूल और फलों से तथा विविध प्रकारके विहग्ङमों से अतिशय सुशोभित श्रीकृष्ण की परम रमणीय विहार स्थली है । इसीलिए इसे काम्यवन कहा गया है ।
- विष्णु पुराण के अनुसार काम्यवन में चौरासी कुण्ड (तीर्थ), चौरासी मन्दिर तथा चौरासी खम्बे वर्तमान हैं । कहते हैं कि इन सबकी प्रतिष्ठा किसी प्रसिद्ध राजा श्रीकामसेन के द्वारा की गई थी
- ऐसी भी मान्यता है कि देवता और असुरों ने मिलकर यहाँ एक सौ अड़सठ(168) खम्बों का निर्माण किया था ।

कुण्ड और तीर्थ

यहाँ छोटे–बड़े असंख्य कुण्ड और तीर्थ है । इस वन की परिक्रमा चौदह मील की है । विमलकुण्ड यहाँ का प्रसिद्ध तीर्थ या कुण्ड है । सर्वप्रथम इस विमलकुण्ड में स्नान कर श्रीकाम्यवन के कुण्ड अथवा काम्यवन की दर्शनीय स्थलियों का दर्शन प्रारम्भ होता है । विमलकुण्ड में स्नान के पश्चात गोपिका कुण्ड, सुवर्णपुर, गया कुण्ड एवं धर्म कुण्ड के दर्शन हैं । धर्म कुण्ड पर धर्मराज जी का सिंहासन दर्शनीय है । आगे यज्ञकुण्ड, पाण्डवों के पंचतीर्थ सरोवर, परम मोक्षकुण्ड, मणिकर्णिका कुण्ड हैं । पास में ही निवासकुण्ड तथा यशोदा कुण्ड हैं । पर्वत के शिखर भद्रेश्वर शिवमूर्ति है । अनन्तर अलक्ष गरुड़ मूर्ति है । पास में ही पिप्पलाद ऋषि का आश्रम है । अनन्तर दिहुहली, राधापुष्करिणी और उसके पूर्व भाग में ललिता पुष्करिणी, उसके उत्तर में विशाखा पुष्करिणी, उसके पश्चिम में चन्द्रावली पुष्करिणी तथा उसके दक्षिण भाग में चन्द्रभागा पुष्करिणी है, पूर्व–दक्षिण के मध्य स्थल में लीलावती पुष्करिणी है । पश्चिम–उत्तर में प्रभावती पुष्करिणी, मध्य में राधा पुष्करिणी है । इन पुष्करिणियों में चौंसठ सखियों की पुष्करिणी हैं । आगे कुशस्थली है । वहाँ शंखचूड़ बधस्थल तथा कामेश्वर महादेव जी दर्शनीय हैं ।, वहाँ से उत्तर में चन्द्रशेखर मूर्ति विमलेश्वर तथा वराह स्वरूप का दर्शन है । वहीं द्रोपदी के साथ पंच पाण्डवों का दर्शन, आगे वृन्दादेवी के साथ गोविन्दजी का दर्शन, श्रीराधावल्लभ, श्रीगोपीनाथ, नवनीत राय, गोकुलेश्वर और श्रीरामचन्द्र के स्वरूपों का दर्शन है । इनके अतिरिक्त चरणपहाड़ी श्रीराधागोपीनाथ, श्रीराधामोहन (गोपालजी), चौरासी खम्बा आदि दर्शनीय स्थल है ।
कामवन ग्राम से दो फर्लांग दूर दक्षिण–पश्चिम कोण में प्रसिद्ध विमल कुण्ड स्थित है। कुण्ड के चारों ओर क्रमश: (1) दाऊजी, (2) सूर्यदेव, (3) श्रीनीलकंठेश्वर महादेव, (4) श्रीगोवर्धननाथ, (5) श्रीमदन मोहन एवं काम्यवन विहारी, (6) श्रीविमल विहारी, (7) विमला देवी, (8) श्रीमुरलीमनोहर, (9) भगवती गंगा और (10) श्रीगोपालजी विराजमान हैं।

श्रीवृन्दादेवी और श्रीगोविन्ददेव

यह काम्यवन का सर्वाधिक प्रसिद्ध मन्दिर है । यहाँ वृन्दादेवी का विशेष रूप से दर्शन है, जो ब्रजमण्डल में कहीं अन्यत्र दुर्लभ है । श्रीराधा–गोविन्ददेवी भी यहाँ विराजमान हैं । पास में ही श्रीविष्णु सिंहासन अर्थात श्रीकृष्ण का सिंहासन है । उसके निकट ही चरण कुण्ड है, जहाँ श्रीराधा

और गोविन्द युगल के श्रीचरणकमल पखारे गये थे। श्रीरूप–सनातन आदि गोस्वामियों के अप्रकट होने के पश्चात धर्मान्ध मुग़ल सम्राट औरंगजेब के अत्याचारों से जिस समय ब्रज में वृन्दावन, मथुरा आदि के प्रसिद्ध मन्दिर ध्वंस किये जा रहे थे, उस समय जयपुर के परम भक्त महाराज ब्रज के श्रीगोविन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीमदनमोहन, श्रीराधादामोदर, श्रीराधामाधव आदि प्रसिद्ध विग्रहों को अपने साथ लेकर जब जयपुर आ रहे थे, तो उन्होंने मार्ग में इस काम्यवन में कुछ दिनों तक विश्राम किया। श्रीविग्रहों को रथों से यहाँ विभिन्न स्थानों में पधराकर उनका विधिवत स्नान, भोगराग और शयनादि सम्पन्न करवाया था। तत्पश्चात वे जयपुर और अन्य स्थानों में पधराये गये। तदनन्तर काम्यवन में जहाँ–जहाँ श्रीराधागोविन्द, श्रीराधागोपीनाथ और श्रीराधामदनमोहन पधराये गये थे, उन–उन स्थानों पर विशाल मन्दिरों का निर्माण कराकर उनमें उन–उन मूल श्रीविग्रहों की प्रतिभू–विग्रहों की प्रतिष्ठा की गई। श्रीवृन्दादेवी काम्यवन तक तो आई, किन्तु वे ब्रज को छोड़कर आगे नहीं गई। इसीलिए यहाँ श्रीवृन्दादेवी का पृथक् रूप दर्शन है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके श्रीरूप सनातन गोस्वामी आदि परिकरों ने ब्रजमण्डल की लुप्त लीलास्थलियों को प्रकाश किया है। इनके ब्रज में आने से पूर्व काम्यवन को वृन्दावन माना जाता था। किन्तु, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ही मथुरा के सन्निकट श्रीधाम वृन्दावन को प्रकाशित किया। क्योंकि काम्यवन में यमुनाजी, चीरघाट, निधिवन, कालीदह, केशीघाट, सेवाकुंज, रासस्थली वंशीवट, श्रीगोपेश्वर महादेव की स्थिति असम्भव है। इसलिए विमलकुण्ड, कामेश्वर महादेव, चरणपहाड़ी, सेतुबांध रामेश्वर आदि लीला स्थलियाँ जहाँ विराजमान हैं, वह अवश्य ही वृन्दावन से पृथक् काम्यवन है। वृन्दादेवी का स्थान वृन्दावन में ही है। वे वृन्दावन के कुन्ज की तथा उन कुन्जों में श्रीराधाकृष्ण युगल की क्रीड़ाओं की अधिष्ठात्री देवी है। अत: अब वे श्रीधाम वृन्दावन के श्रीरूप सनातन गौड़ीय मठ में विराजमान हैं। यहाँ उनकी बड़ी ही दिव्य झाँकी है। श्रीगोविन्द मन्दिर के निकट ही गरुड़जी, चन्द्रभाषा कुण्ड, चन्द्रेश्वर महादेवजी, वाराहकुण्ड, वाराहकूप, यज्ञकुण्ड और धर्मकुण्डादि दर्शनीय हैं।

धर्म कुण्ड

यह कुण्ड काम्यवन की पूर्व दिशा में हैं। यहाँ श्रीनारायण धर्म के रूप में विराजमान हैं। पास में ही विशाखा नामक वेदी है। श्रवणा नक्षत्र, बुधवार, भाद्रपद कृष्णाष्टमी में यहाँ स्नान की विशेष विधि है। धर्म कुण्ड के अन्तर्गत नर–नारायण कुण्ड, नील वराह, पंच पाण्डव, हनुमान जी, पंच पाण्डव कुण्ड (पञ्च तीर्थ) मणिकर्णिका, विश्वेश्वर महादेवादि दर्शनीय हैं।

यशोदा कुण्ड

काम्यवन में यहीं कृष्ण की माता श्रीयशोदाजी कापित्रालय था। श्रीकृष्ण बचपन में अपनी माता जी के साथ यहाँ कभी–कभी आकर निवास करते थे। कभी–कभी नन्द–गोकुल अपने गऊओं के साथ पड़ाव में यहीं ठहरता था। श्रीकृष्ण सखाओं के साथ यहाँ गोचारण भी करते थे।* ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है। यह स्थान अत्यन्त मनोहर है।

गया कुण्ड

गया कुण्ड,

विमल कुण्ड

गयातीर्थ भी ब्रजमण्डल के इस स्थान पर रहकर कृष्ण की आराधना करते हैं। इसमें अगस्त कुण्ड भी एक साथ मिले हुए हैं। गया कुण्ड के दक्षिणी घाट का नाम अगस्त घाट है। यहाँ आश्विन माह के कृष्ण पक्ष में स्नान, तर्पण और पिण्डदान आदि प्रशस्त हैं।

प्रयाग कुण्ड

तीर्थराज प्रयाग ने यहाँ श्रीकृष्ण की आराधना की थी। प्रयाग और पुष्कर ये दोनों कुण्ड एक साथ हैं।

द्वारका कुण्ड

श्रीकृष्ण ने यहाँ पर द्वार का से ब्रज में पधारकर महर्षियों के साथ शिविर बनाकर निवास अवस्थित किया था। द्वारकाकुण्ड, सोमती कुण्ड, मानकुण्ड और बलभद्र कुण्ड– ये चारों कुण्ड परस्पर सन्निकट अवस्थित हैं।

नारद कुण्ड

यह नारदजी की आराधना स्थली है। देवर्षि नारद इस स्थान पर कृष्ण की मधुर लीलाओं का गान करते हुए अधैर्य हो जाते थे।

मनोकामना कुण्ड

विमल कुण्ड और यशोदा कुण्ड के बीच में मनोकामना कुण्ड और काम सरोवर एक साथ विराजमान हैं। यहाँ स्नानादि करने पर मन की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। काम्यवन में गोपिकारमण कामसरोवर है, जहाँ पर मन की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। उसी काम्यवन में अन्यान्य सहस्त्र तीर्थ विराजमान हैं।

सेतुबन्ध सरोवर

श्रीकृष्ण ने यहाँ पर श्रीराम के आवेश में गोपियों के कहने से बंदरों के द्वारा सेतुका निर्माण किया था। अभी भी इस सरोवर में सेतु बन्ध के भग्नावशेष दर्शनीय हैं। कुण्ड के उत्तर में रामेश्वर महादेवजी दर्शनीय हैं। जो श्रीरामावेशी श्रीकृष्ण के द्वारा प्रतिष्ठित हुए थे। कुण्ड के दक्षिण में उस पार एक टीले के रूप में लंकापुरी भी दर्शनीय है।

प्रसंग

श्रीकृष्ण लीला के समय दिन परम कौतुकी श्रीकृष्ण इसी कुण्ड के उत्तरी तट पर गोपियों के साथ वृक्षों की छाया में बैठकर विनोदिनी श्रीराधिका के साथ हास्य–परिहास कर रहे थे। उस समय इनकी रूप माधुरी से आकृष्ट होकर आस पास के सारे बंदर पेड़ों से नीचे उतरकर उनके चरणों में प्रणामकर किलकारियाँ मारकर नाचने–कूदने लगे। बहुत से बंदर कुण्ड के दक्षिण तट के वृक्षों से लम्बी छलांग मारकर उनके चरणों के समीप पहुँचे। भगवान श्रीकृष्ण उन बंदरों की वीरता की प्रशंसा करने लगे। गोपियाँ भी इस आश्चर्यजनक लीला को देखकर मुग्ध हो गई। वे भी भगवान श्रीरामचन्द्र की अद्भुत लीलाओं का वर्णन करते हुए कहने लगीं। कि श्रीरामचन्द्रजी ने भी बंदरों की सहायता ली थी। उस समय ललिताजी ने कहा– हमने सुना है कि महापराक्रमी हनुमान जी ने त्रेतायुग में एक छलांग में समुद्र को पार कर लिया था। परन्तु आज तो हम साक्षात रूप में बंदरों को इस सरोवर को एक छलांग में पार करते हुए देख रही हैं। ऐसा सुनकर कृष्ण ने गर्व करते हुए कहा– जानती हो ! मैं ही त्रेतायुग में श्रीराम था मैंने ही रामरूप में सारी लीलाएँ की थी। ललिता श्रीरामचन्द्र की अद्भुत लीलाओं की प्रशंसा करती हुई बोलीं– तुम झूठे हो। तुम कदापि राम नहीं थे। तुम्हारे लिए कदापि वैसी वीरता सम्भव नहीं। श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा– तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है, किन्तु मैंने ही रामरूप धारणकर जनकपुरी में शिवधनु को तोड़कर सीता से विवाह किया था। पिता के आदेश से धनुष-बाण धारणकर सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट और दण्डकारण्य में भ्रमण किया तथा वहाँ अत्याचारी दैत्यों का विनाश किया। फिर सीता के वियोग में वन–वन भटका। पुन: बन्दरों की सहायता से रावण सहित लंकापुरी का ध्वंसकर अयोध्या में लौटा। मैं इस समय गोपालन के द्वारा वंशी धारणकर गोचारण करते हुए वन–वन में भ्रमण करता हुआ प्रियतमा श्रीराधिका के साथ तुम गोपियों से विनोद कर रहा हूँ। पहले मेरे रामरूप में धनुष–बाणों से त्रिलोकी काँप उठती थी। किन्तु, अब मेरे मधुर वेणुनाद से स्थावर–जंगम सभी प्राणी उन्मत्त हो रहे हैं। ललिताजी ने भी मुस्कराते हुए कहा– हम केवल कोरी बातों से ही विश्वास नहीं कर सकतीं। यदि श्रीराम जैसा कुछ पराक्रम दिखा सको तो हम विश्वास कर सकती हैं। श्रीरामचन्द्रजी सौ योजन समुद्र को भालू–कपियों के द्वारा बंधवाकर सारी सेना के साथ उस पार गये थे। आप इन बंदरों के द्वारा इस छोटे से सरोवर पर पुल बँधवा दें तो हम विश्वास कर सकती हैं। ललिता की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने वेणू–ध्वनि के द्वारा क्षणमात्र में सभी बंदरों को एकत्र कर लिया तथा उन्हें प्रस्तर शिलाओं के द्वारा उस सरोवर के ऊपर सेतु बाँधने के लिए आदेश दिया। देखते ही देखते श्रीकृष्ण के आदेश से हज़ारों बंदर बड़ी उत्सुकता के साथ दूर -दूर स्थानों से पत्थरों को लाकर सेतु निर्माण लग गये। श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से उन बंदरों के द्वारा लाये हुए उन पत्थरों के द्वारा सेतु का निर्माण किया। सेतु के प्रारम्भ में सरोवर की उत्तर दिशा में श्रीकृष्ण ने अपने रामेश्वर महादेव की स्थापना भी की। आज भी ये सभी लीलास्थान दर्शनीय हैं। इस कुण्ड का नामान्तर लंका कुण्ड भी है।

लुकलुकी कुण्ड

गोचारण करते समय कभी कृष्ण अपने सखाओं को खेलते हुए छोड़कर कुछ समय के लिए एकान्त में इस परम रमणीय स्थान पर गोपियों से मिले। वे उन ब्रज– रमणियों के साथ यहाँ पर लुका–छिपी (आँख मुदउवल) की क्रीड़ा करने लगे। सब गोपियों ने अपनी–अपनी आँखें मूँद लीं और कृष्ण निकट ही पर्वत की एक कन्दरा में प्रवेश कर गये। सखियाँ चारों ओर खोजने लगीं, किन्तु कृष्ण को ढूँढ़ नहीं सकीं। वे बहुत ही चिन्तित हुई कि कृष्ण हमें छोड़कर कहाँ चले गये ? वे कृष्ण का ध्यान करने लगीं। जहाँ पर वे बैठकर ध्यान कर रही थीं, वह स्थल ध्यान–कुण्ड है। जिस कन्दरा में कृष्ण छिपे थे , उसे लुक–लुक कन्दरा कहते हैं।

चरणपहाड़ी

चरणपहाड़ी, काम्यवन

श्रीकृष्ण इस कन्दरा में प्रवेशकर पहाड़ी के ऊपर प्रकट हुए और वहीं से उन्होंने मधुर वंशीध्वनि की। वंशीध्वनि सुनकर सखियों का ध्यान टूट गया और उन्होंने पहाड़ी के ऊपर प्रियतम को वंशी बजाते हुए देखा। वे दौड़कर वहाँ पर पहुँची और बड़ी आतुरता के साथ कृष्ण से मिलीं। वंशीध्वनि से पर्वत पिघल जाने के कारण उसमें श्रीकृष्ण के चरण चिह्न उभर आये। आज भी वे चरण– चिह्न स्पष्ट रूप में दर्शनीय हैं। पास में उसी पहाड़ी पर जहाँ बछडे चर रहे थे और सखा खेल रहे थे, उसके पत्थर भी पिघल गये जिस पर उन बछड़ों और सखाओं के चरण– चिह्न

अंकित हो गये, जो पाँच हज़ार वर्ष बाद आज भी स्पष्ट रूप से दर्शनीय हैं। लुक–लुकी कुण्ड में जल–क्रीड़ा हुई थी। इसलिए इसे जल–क्रीड़ा कुण्ड भी कहते हैं।

विह्वल कुण्ड

चरणपहाड़ी के पास ही विह्वल कुण्ड और पञ्चसखा कुण्ड है। यहाँ पर कृष्ण की मुरली ध्वनि को सुनकर गोपियाँ प्रेम में विह्वल हो गई थी। इसलिए वह स्थान विह्वल कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पञ्च सखा कुण्डों के नाम रग्ङीला, छबीला, जकीला, मतीला और दतीला कुण्ड हैं। ये सब अग्रावली ग्राम के पास विद्यमान हैं।

यशोधरा कुण्ड

नामान्तर में घोषरानी कुण्ड है। घोषरानी यशोधर गोप की बेटी थी। यशोधर गोप ने यहीं अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। श्रीकृष्ण की मातामही पाटला देवी का वह कुण्ड है।

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती भजन स्थली

लुकलुकी कुण्ड के पास ही बड़े ही निर्जन किन्तु सुरम्य स्थान में श्रीप्रबोधानन्दजी की भजन–स्थली है। श्रीप्रबोधानन्द , श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के गुरु एवं पितृव्य थे। ये सर्वशास्त्रों के पारंगत अप्राकृत कवि थे। राधारससुधानिधि, श्रीनवद्वीप शतक, श्रीवृन्दावन शतक आदि इन्हीं महापुरुष की कृतियाँ हैं। श्रीकविकर्णपूर ने अपने प्रसिद्ध गौरगणोद्देशदीपिका में उनको कृष्णलीला की अष्टसखियों में सर्वगुणसम्पन्ना तुंगविद्या सखी बतलाया है। श्रीरग्ङम में श्रीमन्महाप्रभु से कुछ कृष्ण कथा श्रवणकर ये श्रीसम्प्रदाय को छोड़कर श्रीमन्महाप्रभु के अनुगत हो गये। श्रीमन्महाप्रभु के श्रीरग्ङम से प्रस्थान करने पर ये वृन्दावन में उपस्थित हुए और कुछ दिनों तक यहाँ इस निर्जन स्थान में रहकर उन्होंने भजन किया था। अपने अन्तिम समय में श्रीवृन्दावन कालीदह के पास भजन करते–करते नित्यलीला में प्रविष्ट हुए। आज भी उनकी भजन और समाधि स्थली वहाँ दर्शनीय है।

फिसलनी शिला

कलावता ग्राम के पास में इन्द्रसेन पर्वत पर फिसलनी शिला विद्यमान है। गोचारण करने के समय श्रीकृष्ण सखाओं के साथ यहाँ फिसलने की क्रीड़ा करते थे। कभी–कभी राधिकाजी भी सखियों के साथ यहाँ फिसलने की क्रीड़ा करती थीं। आज भी निकट गाँव के लड़के गोचारण करते समय बड़े आनन्द से यहाँ पर फिसलने की क्रीड़ा करते हैं। यात्री भी इस क्रीड़ा कौतुकवाली शिला को दर्शन करने के लिए जाते हैं।

व्योमासुर गुफ़ा

व्योमासुर गुफ़ा, काम्यवन

इसके पास ही पहाड़ी के मध्य में व्योमासुर की गुफ़ा है। यहीं पर कृष्ण ने व्योमासुर का वध किया था। इसे मेधावी मुनि की कन्दरा भी कहते हैं। मेधावी मुनि ने यहाँ कृष्ण की आराधना की थी। पास में ही पहाड़ी नीचे श्रीबलदेव प्रभु का चरणचिह्न है। जिस समय श्रीकृष्ण व्योमासुर का वध कर रहे थे, उस समय पृथ्वी काँपने लगी। बल्देव जी ने अपने चरणों से पृथ्वी को दबाकर शान्त कर दिया था। उन्हीं के चरणों का चिह्न आज भी दर्शनीय है।

प्रसंग

एक समय कृष्ण गोचारण करते हुए यहाँ उपस्थित हुए। चारों तरफ वन में बड़ी–बड़ी हरी–भरी घासें थीं। गऊवें आनन्द से वहाँ चरने लग गई। श्रीकृष्ण निश्चिन्त होकर सखाओं के साथ मेष(भेड़)चोरी की लीला खेलने लगे। बहुत से सखा भेड़ें बन गये और कुछ उनके पालक बने। कुछ सखा चोर बनकर भेड़ों को चुराने की क्रीड़ा करने लगे। कृष्ण विचारक (न्यायाधीश) बने। मेष पालकों ने न्यायधीश कृष्ण के पास भेड़ चोरों के विरुद्ध मुक़दमा दायर किया। श्रीकृष्ण दोनों पक्षों को बुलाकर मुकदमे का विचार करने लगे। इस प्रकार सभी ग्वालबाल क्रीड़ा में आसक्त हो गये। उधर व्योमासुर नामक कंस के गुप्तचर ने कृष्ण को मार डालने के लिए सखाओं जैसा वेश धारण कर सखा मण्डली में प्रवेश किया और भेड़ों का चोर बन गया तथा उसने भेड़ बने हुए सारे सखाओं को क्रमश: लाकर इसी कन्दरा में छिपा दिया। श्रीकृष्ण ने देखा कि हमारे सखा कहाँ गये ? उन्होंने व्योमासुर को पहचान लिया कि यह कार्य इस सखा बने दैत्य का ही है। ऐसा जानकर उन्होंने व्योमासुर को पकड़ लिया और उसे मार डाला। तत्पश्चात् पालक बने हुए सखाओं के साथ पर्वत की गुफ़ा से सखाओं का उद्धार किया। श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण की इस लीला का वर्णन देखा जाता है।

भोजन थाली

भोजन थाली, काम्यवन

व्योमासुर गुफ़ा से थोड़ी दूर भोजन थाली है। श्रीकृष्ण ने व्योमासुर का वधकर यहीं पर इस कुण्ड में सखाओं के साथ स्नान किया था उस कुण्ड को क्षीरसागर या कृष्णकुण्ड कहते हैं। इस कुण्ड के ऊपर कृष्ण ने सब गोप सखाओं के साथ भोजन किया था। भोजन करने के स्थल में अभी भी पहाड़ी में थाल और कटोरी के चिह्न विद्यमान हैं। पास में ही श्रीकृष्ण के बैठने का सिंहासन स्थल भी विद्यमान है। भोजन करने के पश्चात् कुछ ऊपर पहाड़ी पर सखाओं के साथ क्रीड़ा कौतुक का स्थल भी विद्यमान है। सखालोग एक शिला को वाद्ययन्त्र के रूप में व्यवहार करते थे। आज भी उस शिला को बजाने से नाना प्रकार के मधुर स्वर निकलते हैं यह बाजन शिला के नाम से प्रसिद्ध है। पास में ही शान्तु की तपस्या स्थली शान्तनुकुण्ड है, जिसमें गुप्तगंगा नैमिषतीर्थ, हरिद्वार कुण्ड, अवन्तिका कुण्ड, मत्स्य कुण्ड, गोविन्द कुण्ड, नृसिंह कुण्ड और प्रह्लाद कुण्ड ये एकत्र विद्यमान हैं। भोजन स्थली की पहाड़ी पर श्रीपरशुरामजी की तपस्या स्थली है। यहाँ पर श्रीपरशुरामजी ने भगवद आराधना की थी।

- काम्यवन में श्रीगौड़ीय सम्प्रदाय के विग्रह–श्रीगोविन्दजी, श्रीवृन्दाजी, श्रीगोपीनाथजी और श्रीमदनमोहनजी हैं।
- श्रीवल्लभ सम्प्रदाय के विग्रह– श्रीकृष्णचन्द्रमाजी, नवनीतप्रियाजी और श्रीमदनमोहनजी हैं।

काम्यवन के दरवाजे

काम्यवन में सात दरवाजे हैं–

1. डीग दरवाजा– काम्यवन के अग्नि कोण में (दक्षिण–पूर्व दिशा में) अवस्थित है। यहाँ से डीग (दीर्घपुर) और भरतपुर जाने का रास्ता है।
2. लंका दरवाजा– यह काम्यवन गाँव के दक्षिण कोण में अवस्थित है। यहाँ से सेतुबन्ध कुण्ड की ओर जाने का मार्ग है।
3. आमेर दरवाजा– काम्यवन गाँव के नैऋत कोण में (दक्षिण–पश्चिम दिशा में) अवस्थित है। यहाँ से चरणपहाड़ी जाने का मार्ग है।
4. देवी दरवाजा– यह काम्यवन गाँव के पश्चिम में अवस्थित है। यहाँ से वैष्णवीदेवी (पंजाब) जाने का मार्ग है।
5. दिल्ली दरवाजा –यह काम्यवन के उत्तर में अवस्थित है। यहाँ से दिल्ली जाने का मार्ग है।
6. रामजी दरवाजा– गाँव के ईशान कोण में अवस्थित है। यहाँ से नन्दगांव जाने का मार्ग है।
7. मथुरा दरवाजा– यह गाँव के पूर्व में अवस्थित है। यहाँ से बरसाना होकर मथुरा जाने का मार्ग है।